पुरुषोत्तम चेतना

अध्यात्म प्रकरण

अ उ म

पं० सदाशिव शास्त्री (रथ शर्मा)

श्री पुरुषोत्तम दास जी मोदि.

मन्त्री

मुमुक्षु भवन सभा.

काशी.

पुरुषोत्तम चेतना

प्रथम खण्ड

अध्यात्म प्रकरण

पद्मश्री पंडित सदाशिव शास्त्री (रथशर्मा)
'चारणमुख्य'
गवेषक—श्री-श्री जगन्नाथ मन्दिर
(जगन्नाथ) पुरी, ओड़िसा

प्रकाशक
चारणीय सतसंग
संकलन—डॉ० देवेन कुमार, उषा कुमार
5882. IRIS Cir. LAPALMA,
CALIFORNIA 90623, U. S. A.

मूल्य : बीस रुपये
प्रथम संस्करण : १९८३
मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

PURUSHOTTAM CHETNA (Adhyatma Prakaran)
by Pt. Sadashiv Shastri (Rath Sharma)

Rs. 20.00
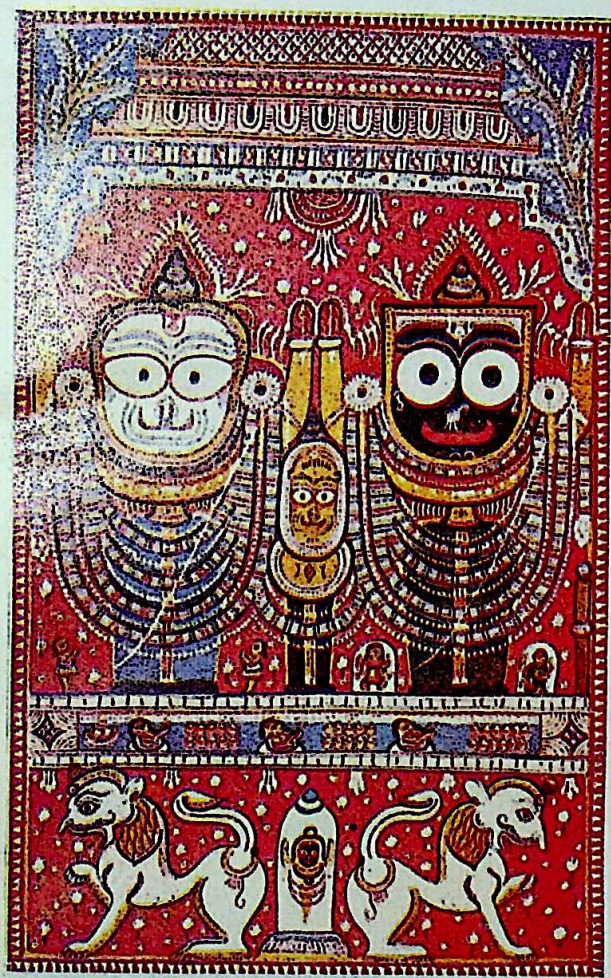
अनेकानेक स्थूलसूक्ष्माणु मूर्ते
व्यामातीतं व्योमरूप प्रकाशः
व्योमाकारं व्यापिनो व्योम संस्थः
व्योमारुद्धं व्योमकेशाब्ज योने ।।

प्रभु जगन्नाथ ! आप एक पुरुषोत्तम ॐकार स्वरूप, तथा त्रिमूर्ति या बहुरूप में प्रकट हुए हैं। शून्यातीत तथा शून्यरूप में विराजित, आकार, निराकार का प्रतीक, आपका निश्चित तत्व ब्रह्मा को भी अगोचर है।

—'भगवान व्यास' स्कन्दपुराणे उ : ख

प्राक्कथन

परम कारुणिक परात्पर भगवान प्राणियों का प्रतिपालन करते हैं। किस देश में किस वेश में मनुष्य को व्यवस्थित करके रखते हैं यह भी विचित्रहै। पवित्र जन्मभूमि से हम लोग कुछ सुदूर अमेरिका देश में ग्रासाच्छादन के लिए परमेश्वर की इच्छा से ही रहते हैं। भाग्य के अनुसार कभी-कभी पवित्र भारत भूमि से सन्त महात्मा, विद्वान कृपा करके अपने देश के प्रवासी वर्गों को धर्मोपदेश देने के लिए पदार्पण करते हैं। श्री पुरुषोत्तम जगन्नाथ जी परमात्मा की अपार कृपा के पात्र उदारभक्त पूज्य पण्डित सदाशिव जी शास्त्री उन नमस्य वर्गों के भीतर अन्यतम। आपके तत्त्वपूर्ण प्रवचनों का महत्त्व-प्रभाव हम प्रवासी भारतीयों तथा अमेरिका का उदार जिज्ञासुओं को प्रभावित करता है और दिग्दर्शित करता है और पावन पुरुषोत्तम के श्री चरणारविन्द के प्रति अनुराग बढ़ाता है। अन्तर की कृतज्ञता के स्वरूप चारण मुख्य पंडित शास्त्री जी के "प्रवचनाटक" प्रतीक विग्रह पुरुषोत्तम जगन्नाथ स्वामी के चरणारविन्दों में भक्ति-पुष्प के रूप में सम्पूर्ण स्वरूप "पुरुषोत्तम चेतना" शीर्षक प्रवचन सार प्रकाशन का सौभाग्य उठा रहे हैं। उनके सतसंग के प्रति परम विदुषी कुमारी उमा भारती पूज्यपादा तथा उत्कल प्रान्त के जगन्नाथ शरणागत मुख्य मन्त्री श्री जानकी वल्लभ पटनायक की शुभेच्छा तथा चारणीय सतसंग के प्रति आशीर्वाद हम लोग गौरव के साथ स्वीकार करते हैं।

यह पवित्र प्रकाशन रूपक भेंट प्रभु श्री जगन्नाथ ग्रहण करेंगे, यह आशा और विश्वास ही सुदूर प्रवासी भारतीय सतसंगियों का भक्तिपूर्ण भरोसा है।

प्रभु के श्री चरणों में निवेदित
अकिंचन संग्राहक प्रकाशक
डा० देवेन्द्र कुमार, ऊषा कुमार
संचालक—चारणीय सतसंग
५८८२. आइरिस सर्कल, ला-पाल्मा,
कैलिफोर्निया, यू० एस० ए० ९०६२३.

नम्र निवेदन और कृतज्ञता

हिन्दी में श्री जगन्नाथ तत्त्व 'पुरुषोत्तम चेतना' १२ प्रकरण बारह खण्ड में प्रकाशित हो रहा है। यह भगवान् जगन्नाथ की अपार कृपा का फल है। प्रति प्रकरण में २० रुपये (लगभग) खर्च आता है। तथा बारह भागों का २४० रुपया मूल्य ही पड़ जाता है। कोई महानुभाव इस उद्यम के प्रति अनुकंपा, सहानुभूति देना चाहते हैं तो वे एकमुश्त २०० रुपये प्रदान करेंगे तो उनको समस्त प्रकाशन मिलेगा। विषय बोध के लिए सम्पूर्ण ग्रन्थ सूची प्रदत्त हो रहा है।

१. अध्यात्म प्रकरण (प्रकाशित)
२. ऐतिहासिक प्रकरण (यन्त्रस्थ)
३. शावर प्रकरण
४. योग प्रकरण
५. स्थापत्य प्रकरण
६. तंत्र प्रकरण
७. स्थल माहात्म्य प्रकरण
८. मठाम्नाय प्रकरण
९. सेवा सपर्या प्रकरण
१०. संस्कृत साहित्य प्रकरण
११. उड्रसाहित्य प्रकरण
१२. अनुभव प्रकरण

प्रथम खण्ड प्रकाशन में चारणगोष्ठी विशेषतः श्री सूर्य नारायण रथ, सहयोगी चारण रामदास, श्री गंगाधर महाराणा (कटक) का श्रम सहयोग स्वीकार योग्य है। मुद्रक श्री सुरेश चन्द्र अग्रवाल, दिल्ली के श्रम के लिए मैं आशीर्वाद प्रदान कर रहा हूं।

पद्मश्री पं० सदाशिव शास्त्री 'रथ शर्मा'
चारणमुख्य पथुरिया साही
पुरी-752001
ओड़िसा

विषय-सूची

चित्र-सूची

मानवीय धर्म का स्वरूप

शंकराचार्य भगवान स्पष्ट रूप में कहते हैं—
'मनुष्य की प्रथम योग्यता मानविकता है।'

मनुष्यत्वं (मानवत्वं) मुमुक्षुत्वं महापुरुष संश्रयः।
(विवेक चूड़ामणि)

प्रवचन-स्थान—५८८२ ला पामा
तारीख—८-८-८२ कैलीफोर्निया

मानविक धर्म का स्वरूप

बुद्धिमान व्यक्ति कहते हैं—आर्य सनातन धर्म बड़ा उदार और मानसिक विचारधारा में गरिष्ठ था। सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय और सर्वजनप्रचोदनाय पथ पर आर्य धर्म महती रूप में ख्यात था। परन्तु उपनिषदों के बाद जनसंख्या, समाज में गोष्ठीवाद के अभ्युदय के कारण क्या यही आदर्श क्षीण नहीं हुआ है ? जीवन का दिग्दर्शन पर्यालोचना करते हुए बहुसम्प्रदाय, गोष्ठी, आचार्य चरणों के अभिमत, दर्शनों की शाखाओं-उपशाखाओं ने क्रमशः लोकसमाज और चरित्र को आध्यात्मवाद के परिसर में विपन्न किया । सामाजिक क्षमता आध्यात्मिक प्रतिष्ठा व शारीरिक बल इन तीनों को आधार करके उदार विश्व-मैत्री-धर्म व्याधिग्रस्त हुआ। जब तक पवित्र इस्लाम व परम उदार ईसाई धर्म की चिन्तनधारा तुलनात्मक विचार में नहीं आई थी, तब तक चलती थी मनोमुखी विचारों की स्वच्छन्द भावना ! परन्तु जब दूसरे धर्मों की विचारधाराएं आर्य सनातन देश में विकसित हुईं, शासन-क्षमता को छोड़कर धर्म-विचार में भी क्रमशः संवेदनशील होने लगीं। साम्प्रदायिक विचार, गोष्ठीवाद, आत्म-प्राधान्य इतना प्रखर हुआ कि इतर आगन्तुक धर्म-प्रचारक इसी को सनातन धर्म का स्वरूप समझकर हम लोगों के सामने अभिनव वाख्यान देने के लिए समर्थ हो गए। तव उचित था ऐक्यमैत्री और करुणा के ऊपर हम लोगों का अड़ जाना । परन्तु हम लोग अधिक भावप्रवण हो गए। अपने-अपने गोष्ठी विचार को श्रेष्ठ प्रतिपादित करने में हम लोगों की पूरी ताकत व्यय हुई। परिणाम हुआ अवसाद !

व्यथा-वेदना को अनुभव अंतरंग करके महर्षि आंगीरस भृगु, कण्डु[1] एवं मार्कण्डेय एक अभिनव मैत्री धारा प्रचलन करने लगे। पुरुषोत्तम क्षेत्र के वैदिक संस्थापक चार ऋषियों का आश्रम जगन्नाथमन्दिर का प्रवर्तकाश्रम रूप में विराजित है—

प्राच्यांगीरस अवाच्ये कण्डुः कौण्डिन्यमात्मजः।
मार्कण्डेय मुदिच्ये स्यात् तन्निम्ने भृगु मंदिरम्।

क्षर से उत्तम अक्षर से उत्तम, पुरुषोत्तम चेतना इन महानुभावों

के मस्तिष्क में उदय हुई। गोष्ठी, जाति, सम्प्रदाय, विचारधाराओं का समन्वय करने के लिए भारत के पूर्व भूखंड में एक नई संस्कृति जागृत हुई। जिसका नाम पड़ा 'व्रात्य' संस्कृति।

अहना प्रत्यंङ् व्रात्यो राद्याप्राड़ नमोव्रात्याय।

अथर्ववेद १५-२

एक कर-पल्लव में पांच उंगलियां होती हैं। इसी में वृद्धांगुष्ठ चारों का समन्वय करता है। जब तर्जनी के साथ मिलता है तो योग का प्रतीक बनता है, मध्यमा में मिलता है तो ध्यान का प्रतीक होता है, जब अनामिका में मिलता है तो व्याख्यान का प्रतीक होता है और जब कनिष्ठिका में मिलता है तो प्रेम का प्रतीक होता है। ऐसे ही ज्ञान, योग, ध्यान और प्रेम चारों को लेकर आर्य सनातन संस्कृति में पुरुषोत्तम चेतना उपस्थित हुई। वह भी प्राचीन पंचशील के आदर्श में प्रतिष्ठित थी।

जाति नीति कुलगोत्रदुरंग, नामरूपगुणदोषवर्जितम्।
देश काल विषयाति वार्ता ब्रह्मतत्त्वमसि भावयात्मनि॥

(शंकराचार्य)

१. अहंकार का त्याग।
२. मैत्री भावना।
३. गोष्ठी समन्वय।
४. जाति विचार में उदारता।
५. साम्य भावना।

अहं त्यागं च मैत्रं च
गोष्ठी समन्वय हृदि:,
उदारवर्ण संपर्क:
साम्यभाव विलक्षणै:।
पञ्च प्रपंच रहितं
क्षेत्रे श्री पुरुषोत्तम,
प्रणम्य देवदेवेश
पावन: पुरुषोत्तम:॥

(आचार्य पद्मपाद कृत 'पुरुष विवृत'
M.S.S. का पृष्ठ ४५)

इस पंच मैत्री सूत्र में आबद्ध होकर पुरुषोत्तमीय चारण गणों ने उदार सहनशील मार्ग का प्रचार किया।

"समत्वमाराधना मचुतस्य"

(वि० पु० १।१७।१०)

पहले जगत्गुरु आदि शंकराचार्य जी ने उसी प्राच्य भूखंड में

गोवर्धन पीठ स्थापित करके उस क्षेत्र को सार्वजनिक क्षेत्र के रूप में मान लिया। तथा,

सर्वभूतेस्विते तस्मिन् मति मैत्री दिवानिशम् (वि पु० १७।७८)

इसके पश्चात् श्री रामानुजाचार्य जी ने उसको अपने विशिष्टा-द्वैतवाद के परिसर से भुक्त करने के प्रयास में हताश हुए। श्री निम्बार्क, विष्णु स्वामी, गौड़माध्व परिवार तथा सब लोगों ने निर्विवाद रूप से उस गोष्ठी समन्वय मतवाद को स्वीकार कर लिया। यही एक क्षेत्र है विश्व में या आर्य सनातन देश में जहां प्राचीन काल से छोटे-बड़े का भाव नहीं है। सबसे बड़े अर्चक नृपति श्रेष्ठ और सबसे छोटे अर्चक भोई दोनों का ही अधिकार समान माना गया है।[२] इस क्षेत्र के कैवल्य को ब्राह्मण स्वपच के हाथ से लेकर भोजन कर सकता है। ऐसा अभिमत व्यास परम्परा ने स्वीकार किया है। अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, रागानुगा कवीर, नानक तथा अनेक सन्त मार्ग के आचार्यों ने इस पूर्वी क्षेत्र को भारत की मर्यादा समझकर अपने-अपने स्थान पर मठ, मन्दिर स्थापित किये। परन्तु यह समन्वयवाद कालान्तर में धीरे-धीरे लुप्त हो गया। भूल यह हुई कि हर एक आचार्य ने अपने-अपने मत विचार की दृष्टि से उस क्षेत्र को अपने-अपने विचार का ही प्रतीक प्रमाणित करने की चेष्टा की। फलतः मैत्रीवाद छिप गया। साम्प्रदायिक विचार तीव्र हो गया। शास्त्राचार में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ, यही विचित्र है। भारतीय पुराण साहित्य निर्विवाद में आर्य संस्कृति और द्रविड़ संस्कृति दोनों के मिलन स्थल के रूप में इसी अभिनव अवदान 'पुरुषोत्तम चेतना' की प्रशस्ति की गई है।* कहा गया भूल जाओ निराकार साकारवाद का विवाद, भूल जाओ आर्य गणों जाति गोष्ठी विचार की संकीर्णता। अपने-अपने धर्म में निष्ठावान रहो। अहंकार त्याग करके इस चेतना में अपने को डुबा दो। इसी चेतना के प्रतीक हैं श्री भगवान जगन्नाथ ! चारों धामों में अन्तिम धाम का प्रतिभू ! इस मूर्ति में न साकारवाद है न निराकारवाद। यहां सारे सम्प्रदायों का अधिकार है और किसी का भी नहीं। सारे मतवादों के प्रतीक हैं श्री प्रभु जगन्नाथ परन्तु किसी के परिवार में आबद्ध नहीं हैं। मैं उस प्रतीकधर्मी पुरुषोत्तम चेतना को सहस्रों बार प्रणाम करता हूं।

—०—

---

*श्री व्यासकृत 'स्कन्दपुराण' अष्टादस पुराणो में अन्तर्भुक्त इस पुराण में पुरुषोत्तम क्षेत्र माहात्म्य ४९ अध्याय का एक विस्तृत ग्रन्थ है। इसमें आर्य

टिप्पणी

(१) स चापि भगवान् कण्डु क्षीणे तपसिमुत्तम।
पुरुषोत्तमनख्यातं विष्णुरायतन ययो।।
(विष्णु पुराण १५।५९)

(२) ऐतिहासिक प्रसिद्ध गजपति राजपरिवार-मुख्य जगन्नाथ जी के उत्सव 'रथयात्रा' में झाड़ू लगाते हैं।
अत्यन्त हीन वर्ग वाउरि श्री जगन्नाथ जी के रथ निर्माण का मुख्य सेवक माना जाता है।

राजा इन्द्रद्युम्न और शबर राजा विश्वावसु के चरित्र अवलम्बन में आर्य द्रविड़ों के प्राधान्य और मिलन को स्वीकार किया है।

चार दिशाओं की ज्योति

कृते च बद्रिकारण्यं त्रेतायां सेतुशंकरम् ।
द्वापरे द्वारकाश्चैव कलौ च पुरुषोत्तमः ॥

पूर्वे ज्योतिर्मयं पीठं दक्षिणे श्रृंगपर्वतम् । (श्रृंगगिरिम्)
पश्चिमे शारदा क्षातं पूर्वे गोवर्धनस्तथा ॥ (मठाम्नाये)

प्रवचन-स्थान—५८८२ आइरिस सर्कल
ला पामा, कैलीफोर्निया
तारीख—११-८-८२

चार दिशाओं की ज्योति

कैशोर, वाल, यौवन, जरा चार अवस्थाओं में मनुष्य अपना दिव्य जीवन बिता रहा है। जीवन की सार्थकता व मानविकता की चरम परिणति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष भी चारों दिशाओं में पर्यवस्थित है। पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण गोल पृथ्वी की चार दिशाएं मानी जाती हैं। अनन्तकाल भी प्रातः, मध्याह्न, संध्या और रात्रि के चक्र में चल रहा है! क्या यही चतुर्मुख ब्रह्मा हैं ? क्या यही सृष्टि का मूलमंत्र है ? क्या गीता का स्रष्टा, वक्ता, मन्ता धीमान् श्री कृष्ण ने इसीलिए 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' बोलकर दिग्दर्शन दिया था। क्या वे स्वयं चतुर्विध रूप में उपासित होते थे ? क्या इसीलिए हर प्राचीन नगर में एक चौमुहानी होती थी। चौमुहानी में एक पीपल का पेड़ होता था। पीपल के पेड़ के नीचे एक ग्राम्य देवता रहकर दिशा बताते थे ? क्या मनुष्य मानव जीवन में चक्षु, कर्ण, घ्राण और रसना के द्वारा अपने विस्तार अनुभव को मापता था ? क्या इसीलिए मर्यादा पुरुषोत्तम राम चार भाइयों के साथ प्रकट हुए थे ? इस 'चार' ने क्यों आर्य-संस्कृति को इतनी अनुचिन्ता प्रदान की है ? सोचने में मन और दूर-दूर जा रहा है। ज्ञान के अपूर्व भंडार, कर्म की अनुपम चेतना, संगीत की अमृतमय मूर्च्छना जीवन संग्राम का आधार क्यों चारों वेदों में प्रकट हुआ? क्या ब्रह्मा का एक और मुख कल्पित नहीं किया जा सकता था ? काल उत्तर देता है, नहीं! अभी भी देखिए हर एक Planned Town चौमुहानी लेकर खड़ा हुआ है। सारा मानव समाज, बुद्धिजीवी ब्राह्मण, बलसेवी क्षत्रिय, कृषि-व्यापारजीवी वैश्य और कर्म संस्थान शूद्रों को लेकर चार वर्णों में विभक्त है। क्या ये चारों वर्ण कभी मिट सकते हैं ? या एक हो सकते हैं ? नहीं। यह मानवीय चिन्ता का चतुष्कोण है। इसी पर जीवन महल खड़ा हुआ है। इसी को लेकर सतयुग में ऋषियों ने बद्रीनारायण दिव्यधाम की कल्पना की थी जहां तप का प्राधान्य था और त्याग आदर्श था। फिर हुआ त्रेतायुग यज्ञ का आधार। सत्य के वृत में यह युग प्रतिष्ठित था। द्वापर में परिचर्या युगाधार और अर्चना आदर्श होकर अभिनव धाम सृष्ट हुआ। कलिकाल में

अनन्य शरणागति निरहंकारनाम प्रचार को लेकर "कलौ च पुरुषोत्तम-धामः" सृष्ट हुआ। क्या यह ऋषियों का ख्याल था, मनोज्ञ विचार था ! क्या इसी चार रहस्य में ऋषि लोग उद्भ्रान्त हुए थे ? क्या भगवान मार्कण्डेय ने हर रात्रि को अहोरात्रि, महारात्रि, कालरात्रिश्च दारुणा, के चार भागों में विभक्त कर दिया।[२] क्या इसी रात्रि में चतुर्व्यूह भगवान ने चिन्मय उन्मेष रूप में योगमाया, विष्णुमाया, महामाया और आसुरी माया के रूप में शक्ति भाव का संचार किया ? यह चार या चतुस्मार्ग चिन्तन क्या एक लघुभावना के ऊपर प्रतिष्ठित है ? नहीं ; चार ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ आधार है। बिन्दु दृढ़ होकर स्नायु, स्नायु दृढ़ होकर मांसपेशी, मांसपेशी दृढ़ होकर अस्थि ! अन्ततः शरीर में परिणत हुआ। यह शरीर की अपूर्ण चतुरावस्था और इसी चतुरावस्था का परिणाम, ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति में जीवन का दिग्दर्शन दिखाता है। ज्ञान का स्वरूप तथा वर्ण शुभ्र, ज्ञान का प्रतीक सप्तफण-युक्त महानाग। ज्ञान सबसे वड़ा और क्षर भाव का प्रतीक। कर्म का कोई आकार नहीं लेकिन विद्युत् वर्ण का न्याय हमेशा चमकता है। सारे जगत् में माया का संसार फैला देता है। कभी ब्रह्म में मिलाता है और कभी छुड़ाता है। ब्रह्म निर्गुण निर्विकल्प कूटस्थ है। इसीलिए अनन्त है। हर एक अनन्त घन नीलवर्ण होता है। यही भक्ति का प्रतीक है। यूपाकार 'चक्र' योग सांकेत रूप में प्रसिद्ध है—आदित्यो यूपः तैतरेय ब्रा २-१-७-२

ज्ञान कर्म योग भक्ति का प्रतीक रूप में चतुर्धामूर्ति पुरी में विरा-जित है। यह अतिवडी संप्रदाय वैष्णवों का अभिमत है।

ज्ञान संकर्षण साक्षात् क्रियाशक्ति सुभद्रिका।
योगरूप महाचक्रः चक्रिभक्तिरहेतुकिः ॥

यही ज्ञान, कर्म और प्रेममय भक्ति[१] तथा संसार-चक्र प्राचीन पुरुषोत्तम क्षेत्र में चतुर्धा मूर्ति हो गए, जैसे भगवान नारायण की चार भुजाएं। ज्ञानमय "नाद" ब्रह्म शंख के रूप में, प्रज्ञामय "अन्तर्ज्ञान" चक्र के रूप में, अज्ञान भेदी कौमोदकीगदा "शासन" के रूप में और जीवन का अमृतमय पद्म जीव तत्त्व रूप में प्रतिभात हुआ। इसीलिए शुभ्र वर्ण क्षरपुरुष जीव-चैतन्य, माया रूपी सुभद्रिका माया चैतन्य, और घनश्यामरूपी प्रभु जगन्नाथ ब्रह्म चैतन्य रूप में संसार चक्र को हाथ में

लेकर कह रहे हैं— आओ, मेरा कुछ नहीं है, न हाथ न पैर न इन्द्रिय तो भी मैं ब्रह्म हूं।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता,
पश्यत्यचक्षुः सः श्रृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति,
वेत्ता तमाहुरग्यं पुरुषः महान्तम ॥

"सर्वेन्द्रिय गुणाभाष् सर्वेन्द्रिय विर्वजितः"— देखो मेरी आंखों में पलक नहीं है। मैं तुम लोगों के लिए सर्वदा जाग्रतावस्था में हूं। देखो मेरे, हाथ में उंगली नहीं है···इसीलिए मेरे लिए सब समान हैं। मैं निर्विकार हूं इसीलिए उपनिषद् में मुझे "अपाकृत, निर्गुण स्वरूप कहा है। बद्रीनारारण श्री बद्री विशाल का नाथ है! रामेश्वरम् रामेश्वर पुरी के प्रभु हैं। श्री द्वारिका नाथ द्वारिका के अधीश हैं। मैं किसी का नाथ नहीं परन्तु जगत का नाथ हूं। मेरी आंखें जैसे चन्द्र और सूर्य, मेरा मुख अग्निमय हुताशन। मेरे कपोलों पर स्थित दो देदीप्यमान बिन्दु जगत् के तुरीय बिन्दु, तुम चाहे ज्ञान मार्ग में जाओ चाहे कर्म मार्ग में अनुप्राणित हो या योग मार्ग में अपने को सूक्ष्म बना लो अन्ततोगत्वा मेरे पास ही आना पड़ेगा। इसी का नाम अनन्य शरणागति। अनन्य शरणागति के अतिरिक्त और कोई गति नहीं। इसीलिए मैं चारों रूप

तपः कृतयुगे श्रेष्ठं त्रेतायां यज्ञमेव च।
द्वापरे परिचर्याश्च कलौ तद् हरि कीर्तनम् ॥

में प्रकटित हुआ हूं। आओ, दिग्भ्रान्त मनुष्य मेरे चतुर्व्यूह चरणारविंद लगाओ। मेरी कृपा से तुम्हें ज्ञान मिल जाएगा—ज्ञान से ध्यान—बुद्धि प्राप्त होगी, ध्यान सर्व कर्म को विलुप्त करके फिर एक बार मेरे चरणों में तुम्हें पहुंचा देगा।' यही चार सोपान, चार दरवाजे, चार विचार महावाक्य को लेकर मैं जगत के लिए अवाक् होकर बैठा हूं।

महावाक्य चतुष्टय

तत्त्वमसि—तुम वही हो—(छा० उपनिषद् ६।८)
अहंब्रह्मास्मि—मैं ब्रह्म हूं—(बृ० उ० ३।१।४।१०)
इद् सर्वयदयमात्मा—जो कुछ है सब आत्मा है।
(बृ० उ० २।४।६)

अयमात्मा ब्रह्म—यह आत्मा ही ब्रह्म है।
(बृ० उ० २५।२१)

संसार समुद्रको पार करने के लिए मैंने तुच्छ लकड़ी के रूप में अपने को प्रकट किया है। लकड़ी ही जीवन का मूल है। जन्म में लकड़ी, नित्य खाद्य में लकड़ी और मृत्यु में लकड़ी आदि, मध्य, अन्त सब में लकड़ी। इसीलिए मैंने अपना रूप लकड़ी में वनाया है,। जिससे मनुष्य समझे कि इसी लकड़ी मय संसार में पुरुषोत्तम चेतना एक मात्र भरोसा आशा व प्रचोदना।

भवाब्धिपोतं पुरुषोत्तमोत्तमे
यपश्यति स पश्यति दारुविग्रहम्।।

(पुरुषोत्तम अर्चन चन्द्रिका १।२२)

गीता १२ अध्याय

श्रेयं हि ज्ञानमभ्यासं ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात् कर्मफल त्यागः त्यागात् शान्ति निरन्तरम्।।

प्रतिताात प्रतीक

—महर्षि पिप्पलाद

एकोवशी सर्वं भूतान्तरात्मा ।
एकरूपं बहुधा यः करोति ।। (कठोपनिषद्)

"यत्न हि प्रतीक दृष्टिरभिप्रेयते सकृदेव तत्न वचनं भवति"
(आचार्यं शंकरः)

"जहां सांकेत विचार मुख्य, वहां एक ही वचन में वस्तु व्यक्त हो जाती है।"

प्रवचन-स्थान—रामकृष्ण योगाश्रम
कोस्टा भीसा, कैली
तारीख—८-१२-७९

प्रतिताात प्रतीक

मानव समाज का समुन्नत काल अल्प जनसंख्या का समाज, संयमता समाज का मूल मन्त्र, अहोरात्रि तल्लीनता निर्जनता का साथी। शान्त सुन्दर परिस्थिति में ऋषि समाज नित्यानन्द में मग्न। आर्य मन्त्र द्रष्टा ध्यान में सोचते हैं सृष्टि और स्रष्टा का स्वरूप कैसा है? क्या थी आदिम अवस्था? क्या थी **ऋतस्यधारा** जो कि समस्त पदार्थों में एक मात्र ऐशी शक्ति सत्ता। यही चिन्ता करते-करते शरीर का ज्ञान धीरे-धीरे लोप हो गया। शरीर कहां है, यह भी विस्मृत हो गया। आत्मा प्रदीप शिखा के स्वरूप ज्योतिमय वस्तु की भांति अन्दर प्रतीत होती है! निश्चल दीपशिखा धीरे-धीरे कम्पमान होकर स्थिर हो गई। इसी को **"शुक्ल ज्योति रसामृतं"** कहा जा सकता है। यह दिव्यलोक की अपूर्व किरण मिलने जा रही है एक अंडाकार किरण राशि में—अंडाकार

"तदण्डमभवद्धैमं ब्रह्मण कारण परं"

अतदण्ड कटाहेन—

तिर्यक चोर्ध्वमधस्तथा कपिथस्य यथा वीजं सर्वतो वै सभावृतम।

(वि० पु० २-७-२२)

किरण सुवर्ण वर्ण की देदीप्यमान दिव्य लोक ज्योति एक पिंड दूसरा ब्रह्माण्ड। इसे देखकर मन आनन्द-सागर में लिप्त हो गया। क्रमशः हृदय देश की दीपशिखा सूक्ष्माति सूक्ष्म होकर हिरण्यगर्भ अंडाकार किरण में विलुप्त हो गई। अव शरीर सत्ता और अनुभव नहीं होती है। सम्यक् अनुभव हुआ शरीर कहीं चला गया है परन्तु मन जाग्रत अवस्था का अनुभव कर रहा है। चित्तवृत्ति निश्चल हो गई और लौटने की कोई इच्छा नहीं है। शीतोष्ण का अनुभव और होता नहीं है। प्रखर सूर्य किरण शरीर के ऊपर कई दिनों से पड़ रही है, पर कोई ज्वाला का अनुभव नहीं, निशा की शीतलता का कोई प्रभाव नहीं, अनुभव भी नहीं, आनन्द ही आनन्द है। हठात् कोई एक दिव्य ध्वनि सुनाई पड़ी। कहां से यह अनाहत ध्वनि आती है, मालूम नहीं। अथ च स्पष्ट अकार की ध्वनि निरवच्छिन रूप में उपलब्ध हो रही है। इधर नेत्रों के सामने एक शुभ्र वर्ण की किरण पुंज एक निश्चित मंडल के रूप में प्रतिभात हो रही है।

इसी अंडाकार मंडल के भीतर प्रथम एक बिन्दु उपलब्ध हुआ जिसे बीज कहा जा सकता है। धीरे-धीरे विन्दु से दो नाल ऊपर गए। इसी दुधारा से एक ओर ऋतम् दूसरी ओर सत्यम्। यही सृष्टि का प्रथम विकास। हर एक द्रव्य में एक ही आत्म विक्रिया। जैसे वृक्ष जगत् में, वीज से अंकुर, अंकुर से दो पत्र, दो पत्र से समग्र वृक्ष की उत्पत्ति होती है। ऐसा ही द्रष्टा अनाहत लोक में प्रतिभात हुआ। मालूम होता है कि चेतना और अव नीचे नहीं जाएगी। शरीर है या नहीं कुछ भी अनुभव नहीं होता है। ऊपर जाना ही निश्चित है निम्न का प्रश्न ही नहीं उठता। कितने दिन अतिवाहित हो गए, स्मरण नहीं। 'अकार' ध्वनि धीरे-धीरे लुप्त हो गई और 'उकार' स्वर सुनाई देता है। क्षुधा और पिपासा की उपलब्धि नहीं होती। वहिर्जगत् का कोई भी प्रभाव नहीं, कोई शब्द भी नहीं सुनाई देता। पूर्वोक्त दिव्य दीपशिखा तथा इसकी आरक्त किरण का प्रकाश भी लुप्त हो गया। वह हिरण्यमय ब्रह्माण्ड में लोप हो गई। अन्दर अनुभव होती है 'उकार' की स्पष्ट ध्वनि। सुनते ही हृदय का स्पन्दन बन्द हो गया। अभी क्रिया होती है दोनों भ्रू के मध्यदेश में। शरीर जीर्ण हो गया है, ऐसा लगता है। लेकिन सूक्ष्मतर मन देखता है नासिका के ठीक ऊपर में दो ज्योतिर्मय विन्दु तरल स्वर्ण की भांति अलग-अलग थे, अभी धीरे-धीरे मिल जाते हैं। त्रिकूट से विद्युत् की स्वरूपा झलक आ रही है। लेकिन देह पर सम्भवतः कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है। आज्ञा-चक्र के नीचे क्या है, वह उपलब्ध नहीं होता है। 'उकार' शब्द भी धीरे-धीरे दूर चला गया। जाते-जाते 'मकार' से मिल गया। अपूर्व 'ओंकार' नाद अनुभव हो रहा है। सूर्य, चन्द्र, तारा मण्डल की गति शरीर के भीतर दृष्ट हो रही है। खगोल जगत् द्रुत गति से घूम रहा है। अन्तर्निहित 'ओंकार' शब्द शायद मुख पर प्रकाशित हो रहा है। नहीं तो सामने एक भारीपन क्यों उपलब्ध हो रहा है ? धीरे-धीरे यह अनुभव भी लुप्त हो गया। किन्तु अनाहत ध्वनि चल रही है। शरीर के अन्दर क्या अनुभव हो रहा है, कोई अनुमान नहीं लगा सकता। किन्तु दक्षिण हस्त की वृद्धागुंष्ठि को अचेतन योगी प्रदर्शन कराता है। क्या यह प्रतीत का प्रतीक है या शारीरिक अनुभव। भीतर तरल चांदी के स्वरूप में एक अर्द्धचन्द्राकार आकृति। तेजोमय द्रव्य के पृष्ठदेश से वह नाद आता है। अनुभव हो रहा है कि वह अर्द्धचन्द्राकार वस्तु अर्धमात्रा या नाद है। श्वास-प्रश्वास की और आवश्यकता नहीं है।

भौतिक शरीर से जैसे एक तेज बाहर जा रहा है। ऐसा अनुभव हो रहा है। नासा के ऊपर कभी यह ज्योति प्रकाशित होती है और कभी बुझ जाती है। क्रमशः भीतर का अनुभव भी लोप हो गया।

बाहर से लोग देखते हैं निष्पन्द-निश्चल शरीर। तीन मास हो गए, ऐसे ही बैठा है। भीतर क्या हो रहा है, कौन जानता है। हठात् नासापुट स्पन्दन हुआ। श्वास चलने लगी। शरीर में रक्त-संचालन का लक्षण प्रतीत हुआ। कपाल का दिव्य तेज प्रकाश क्रमशः ह्रास हो जाता है। धीरे-धीरे चकित नेत्र खुल गए। सामान्य क्लान्ति के साथ मुख से अतार्कित ध्वनि आई –

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।। (गीता, १२)

परिजन एकत्रित हुए। नम्रता के परिवेश के भीतर एक वयस्क ने पूछा—पूज्य द्रष्टा! आपको क्या अनुभव हुआ था? कृपया व्यक्त करके जगत् का कल्याण कीजिए। प्रथम एक अस्पष्ट शब्द निकला –

अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां,
बह्वीप्रजा सृजमानां स्वरूपाः।

पुनः तल्लीनता के भीतर दूसरा शब्द स्पष्ट हुआ—**ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्मः।**

सामान्य हास्य रेखा के साथ तुरीयातीत आनन्द से प्रत्यावर्तन रूपक ग्लानि कपाल रेखा के रूप में स्पष्ट हुई। अनुभवी बोले—**शृणुस्तं सर्वे-अमृतस्य पुत्राः।** मैं अपनी दिव्यानुभूति व्यक्त करता हूं। आचरण के लिए मेरे वचन पर ध्यान दो –

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते।
आचारः प्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।।

यह प्रवचन की वस्तु नहीं है **'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यम्'**—सुनो मैं समाधि में बैठने के चौदह दिन तक जागतिक विकार का अनुभव करता रहा। चित्तवृत्ति स्थिर नहीं हुई थी। भगवान् की अपार कृपा से धीरे-धीरे चित्त स्थिर होने लगा। मन, बुद्धि, अन्तर्चेतना जाग्रत अवस्था से स्वप्नावस्था में परिवर्तित हुई। स्वप्नावस्था बड़ी ही विचित्र! कभी ज्योतिर्मय पुरुष के सामने आकृष्ट होता था, कभी तुम लोगों की स्नेह प्रीति भी याद आती थी। ऐसे कितने दिन चले गए, मैं ठीक नहीं कह सकता हूं। एक दिन दिखाई दिया शरीर के भीतर एक

अनाहत ज्योति प्रकाशित होती है। इसका आकार वृद्धांगुष्ठि की भांति था।

"अंगुष्ठमात्रा पुरुषान्तरात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।"

उसी समय बाहर के सेवक ने गद्गद कण्ठ से कहा, "बाबा, मैंने देखा है आप एक दिन वृद्धांगुष्ठि को निश्चित रूप में ध्यानावस्था में प्रदर्शित करते थे।" प्रवक्ता हंस दिए। बोले, "इस प्रदर्शन के प्रायः एक महीने तक जगत् और स्वयं को भूल गया। यह भूल जाना कितना आनन्दमय था, यह मैं प्रकाश नहीं कर सकता हूं। मैंने यह अनुभव किया कि सुख और दुःख की कोई चिन्ता मन और बुद्धि में नहीं थी। मैं आगे जाने के लिए व्यग्र हो गया। आगे बढ़ने में कोई बाधा नहीं थी। पहले देखा था एक शुक्लाकार ज्योति में मेरी जीवन ज्योति मिल गई थी। उस ज्योति के भीतर मैंने सारे जगत् की उपलब्धि की ! वह ज्योति ही 'ज्येष्ठ प्रथम देव आपुः' थी। ॐ अन्तरीक्षचरति भूतेषु गुहायां विश्वोतो मुखम्। वह ज्योति ही तं यज्ञस्तं वषट्कारः आपो ज्योति रसोऽमृतम्। ब्रह्मभूर्भुवो स्वरम्। इसका दूसरा नाम 'शुक्ला ज्योति रसामृत'। वही रसामृत 'भू भुव स्व' तीनों लोकों का स्रष्टा। इसके बाद मैं सुषुप्ति अवस्था में बाह्य और अन्तर्ज्ञान दोनों से विस्मृत हो गया। केवल आनन्द ही आनन्द। इस आनन्द के भीतर एक दिन अकस्मात् मेरा भ्रूमध्य कम्पमान हुआ। विद्युत् की सम्पूर्ण शोभा प्रतीत हुई और उपलब्ध हुआ महानाद—

भ्रुवोर्मध्ये प्राण मावेस्य सम्यक्
सतं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।८।१०।
यदक्षरं (ॐ) वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।११।

'अ उ म' की समन्वय ध्वनि 'प्रणव' वही तस्यवाचक प्रणव था। वह शब्द अभी तक बाहर और भीतर अवशेष उपलब्ध हो रहा है। वत्स, वही सबसे अधिक आनन्ददायक दर्शन था। चैतन्य आने पर भी इसका अनुभव हो रहा है। वही था जीव और परम के योगायोग का माध्यम। जाग्रति और सुषुप्ति अवस्था के बीच में प्रणव का प्रभाव बहुत ही ऊंचा था। कौन जानता है, वही अवस्था पुनः आ सकती है या नहीं। जीवन का वह परम भाग्य और परमसुख था, इतना स्मरण रखो। जाओ,

मुण्डकउपनिषद:- अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्यौ दिश श्रोत्रे वागविवृताश्च वेदाः
वायुप्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येषसर्वभूतान्तरात्मा
तेजमामकं
अग्निमूर्द्धा
सूर्यचक्षुः
शशांकनेत्र
दिशंश्रोत्रं
घ्राण
रसन-अग्नि
विवृताश्च वेदा (वाणी)
मनं =
=प्राण हृदयं
पादस्य विश्वं
पद्भ्यां पृथिवी
तद्धामपरम मम
गीता:
सर्वभूतान्तरात्मा
मुंडक:
न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्, यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् गीता
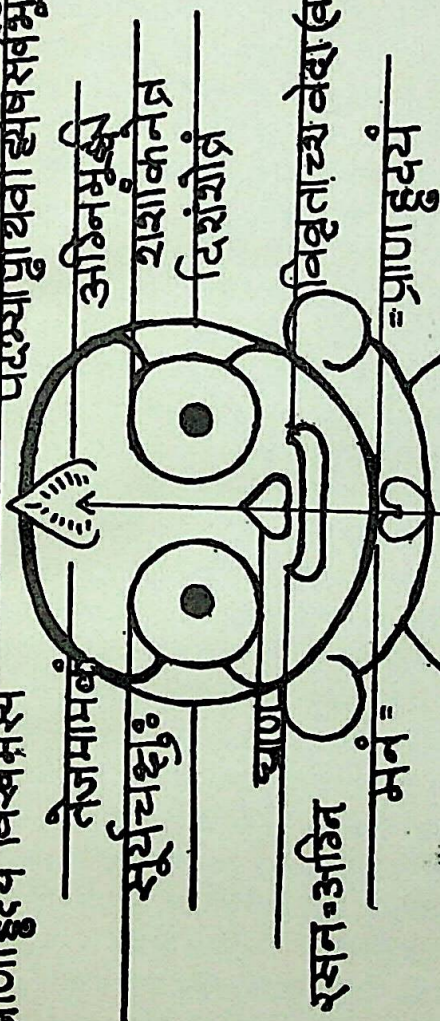
दो सुनहरी पत्र परिशोभित किंचित् सोमरस ले आओ। इस अपूर्व लता का रस एक नारियल पात्र में रखकर भगवान को समर्पण करके पान करने लगे और धीरे से खड़े हुए। बोले, "चलो, देखा जाय पिण्ड और ब्रह्माण्ड के भीतर क्या प्रभेद है? और सुनो! प्रणव ही ब्रह्म है। निराकार, साकार उपासना का माध्यम है, इसे स्मरण रखो। पंचमात्रा की समष्टि, अकार, उकार, मकार, नाद और विंदु, प्रणव है।" **आद्यं च त्यक्षर ब्रह्म त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठित: एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायाम परं तप:** (अत्रि १-११)। इसका आकार जरायु मध्यस्थ शिशु की भांति है।

कृष्ण घन नील वर्ण ज्योति के भीतर अकार का वर्ण था शुक्ल, सटे हुए दो वृत्तों की भांति। इसके नीचे अर्धचन्द्राकार आकृति उकार, जिसका वर्ण था गाढ़ा रक्तवर्ण। वह विश्वतो मुख था। इसके वाद प्रणव का अन्त भाग ऊपर जाकर मकार में परिणत हुआ। ऊपर भाग में शुक्लवर्ण नाद का रमणीय दर्शन और नाद के भीतर सुवर्ण वर्ण के पराविन्दु का दर्शन अभी भी हमारे सामने प्रतिभात होता है।* वही विश्व और जीव की आदिशाश्वत सत्ता जिसे तुम लोग शिशुवेद कह सकते हो। कारण, वही वेद का निर्यास "**प्रणव: वेदस्य आत्मा !**" वाह्य जगत् में इसका कोई निदर्शन नहीं है। समय आएगा अंगुष्ठ मात्र स्वरूप सुदर्शन ज्योति प्रतीक रूप में प्रकट होगी।

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्यजात: प्रतिरेक आसीत्।

हिरण्यगर्भ को ज्येष्ठ रूप में प्रतीक उपासक गण उपासना करेंगे। व्रात्यों की यह उपासना जगत् में ख्यात होगी। आज्ञाचक्र में जो अनुभव हुआ, उसी विसर्ग रूपा ज्योति को प्रतीकवादी कहेंगे। "**विष्णु माया समुद्रिका।**" इसी व्याप्तवाद में जगत् चलता है। परन्तु इनके हाथ पैर नहीं होंगे। कारण, वह निर्लिप्त रहेंगे। निर्लिप्ता तथा समस्त जगत् की पालनकर्त्री। इसी के ऊपर जो अनुभव है वह फिर कभी तुम लोगों से कहेंगे। यही स्मरण रखो एक दिन ऋषि अंगिरस के द्वारा पूर्व दिशा में समुद्र के तट पर वहीं प्रणव प्रकट होंगे। प्रतीकवाद के स्वरूप में। लोक और वेद में वह पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध होंगे। व्यक्त रूप होते हुए भी इस मूर्ति में अव्यक्त भाव प्रकट होगा। आत्मदर्शन का प्रतीक वह मूर्ति,

---

*पृष्ठ चित्र द्रष्टव्य

मूर्ति नहीं अमूर्ति। साधारण लोग उन्हें मूर्ति रूप में ले सकते हैं। जगन्नाथ नाम दे सकते हैं। परन्तु वही है **"सर्वेन्द्रिय गुणाभासः सर्वेन्द्रिय विवर्जितः"** अक्षर ब्रह्म प्रणव का स्वरूप। चलो इस संसार के तुच्छ सुख का अनुभव पुनः करना पड़ेगा। यह यौगिक अनुभूति रूपक से प्रतीत होता है। प्रणव ही योग की आत्मा **"तस्य वाचकः प्रणवः"** और वही महान् प्रणव रहस्य के आधार में योगेश्वर, जगदीश्वर, जगन्नाथ मूर्ति प्रतीक विग्रह रूप में भारतीय संस्कृति में प्रतिष्ठित है। पूजाकारिका में वही प्रार्थना सूत्र नित्य पूजकगण उच्चारण करते हैं।

योगमूर्ति जगन्नाथः त्रिधामात्रात्मकं स्वयम्।
आगच्छन्तु पूजापीठे प्रणवस्तारकः वपुः॥
पूजांगृहाण देवेश वेदात्मा मोक्षदायकः।
साकारं च निराधारं, सर्वतत्त्वाश्रयः विभुम्॥

(इति आवाहन प्रार्थनामन्त्र नित्यपूजायाम्)

न चेत् ऐसी असंपूर्ण मूर्ति को कौन मान्य करता? **"प्रणवो हि परं-ब्रह्म"** शास्त्रों में, यौगिक अनुभव में परतत्त्व का प्रतीक वाह्यान्तर में अव्यय उपादान। सृष्टि, स्थिति, लय का प्रतीक उनको जानने के वाद अनुभव समाप्त हो जाता है। वास्तव में वह ही ईश्वर, अध्यात्म विद्या योगियों के हृदय देश का अनुभव, सर्वव्यापी ॐकार ही चिरन्तन चिन्तनीय है। **ॐमित्येव सदा विप्रा पठतः ध्यायत केशव।** (हरिवंश, ३-८९-९)। पंचमात्रात्मक पवित्रमोंकार हि सत्य शिव सुन्दर का दिव्य स्वरूप उनको जानने के वाद मानव मुनि संज्ञा प्राप्त हो जाता है। माण्डूक्य उपनिषद् का यह अभिमत सर्वजन ग्राह्य है।

प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परं स्मृतः।
अपूर्वाऽनन्तरोऽबाह्योऽनपरः प्रणवोऽव्ययम्॥
सर्वस्य प्रणवो ह्यादिः मध्यमन्तरस्तथैव च।
एवं हि प्रणवं ज्ञात्वा व्यश्नुते तदनंतरम्॥
प्रणवो ह्यीश्वरं विद्यात् सर्वस्य हृदयेस्थितम्।
सर्वव्यापिनमोंकारं मत्वा धीरो न शोचति॥
अमात्रोऽनन्तमात्राश्च द्वैतस्योपशमः शिवः।
ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः॥

(का० १-२६-२९)

इससे प्रतीत होता है, प्रणव अनुभव के पहले न कुछ था, न पीछे

कुछ रह गया। प्रणव दर्शन के बाद जागतिक दुःख का विनाश हो जाता है। इसलिए आर्य पूर्वसूरी लोग विचार करके कलिसन्तरण के लिए दारवी मूर्ति को भवसागर पार करने के लिए कलियुग के युगधाम में रख दिया है।

"न कल्पिते चाक्षुष दर्शनेन।"

स्कन्द पुराण हाथ उठाकर कहता है—जगन्नाथ जी साक्षात् ॐकार ही हैं।

शब्दब्रह्माभिधानाय जगद्रूपाय ते नमः।

वही 'मांडूक्य उपनिषद्' का परम अनुभव, विश्व के समस्त तत्त्व की पूर्णता। 'स्कन्द पुराण' प्रणव को ही जगन्नाथ पुरुषोत्तम के आदि तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है।

"इति श्रुत्वा सुरेशानां देवः प्रणव रूपिणम्।"

अप्राकृत जगन्नाथ के मुखारविन्द प्रणव के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। श्री मुखारविन्द में दो गोलाकार चक्षु अकार का प्रतीक है।

"अकारः प्रथम मात्रा शुक्ल वर्णः स त्राटकम्।" (नीलतंत्रे)

तन्निम्न देश का अधर देश उकार मात्रा, हिंगुल वर्ण उकार मात्रा का अन्त भाग से मकार मात्रा उर्ध्व देश तक व्यापृत होकर नाद बिन्दुमय ॐ मित्येतदक्षरमिदं सर्वं रूप में पूर्णता का संकेत रूप बन गया है।

हिंगुल वर्ण उकार अर्धं प्रणवः सव्यगः,
कर्णिकाकृत मकारः नाद विन्दु समावृतम्।
"पूर्णब्रह्म वै ॐकार सर्वं तत्त्वमय स्वराट्।"

इस कारण को भित्ति करके समस्त मतवादों ने मान लिया है। उनको 'ब्रह्माभास स्वरूप में' चाक्षुष प्रमाण के विचार में प्रत्येक लिपि को अकार, उकार, मकार, नाद बिंदु को संकेत रूप में सजा लीजिए। वह ॐकार प्रतीक रूप श्री जगन्नाथ के मुखमण्डल के साथ मिल जाता है। मौलिकतः यौगिक अनुभव ब्रह्माक्षर प्रणव हि पुरुषोत्तम चेतना का मूलसूत्र है। (प्रणव तत्व चित्र देखिये)
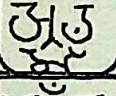
प्रणमन्तीह वै वेदाः तस्मात् प्रणव उच्यते॥ (श्रुते)
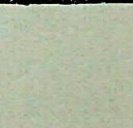
इसलिए **'सत्यं प्रत्यक्ष गोचरः'** सूत्र से प्रतीकवाद ही प्रतिपादित होता है! वृहदाकार त्रिपृष्ठाकृति यह त्रिमूर्ति विशेषतः—जगन्नाथ पुरुषोत्तम विग्रह के निर्गुण चिन्तन तथा सगुण भावना की संधिस्थल का स्वप्रकाश परब्रह्म स्वरूप है। जैसाकि जाग्रत नृसिंह तत्त्व निर्जीवत्व के प्रतीक स्तम्भ में प्रकट हुए थे। **"स्तम्भान्तराले मुदितः नृसिंहः"** और

प्रणवतत्त्व (चित्र परिचय)

भारतदेश में प्राचीन शिलालिपि, विग्रह लिपि और ताम्र शासन में प्रणव पवित्रतम चित्र उपलब्ध होता है, परन्तु यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का बिषय-वस्तु है, केवल एक प्रमाण के लिए कुछ लिपियों का अ, उ, म नाद बिन्दु को मिलाकर न्यासचित्र (Composition) किया गया है। उसका साथ-साथ कुछ प्राचीनतम सांकेत का चित्र भी प्रदत्त हुआ है, जिसका 'स्वरूप जगन्नाथजी के साथ प्राय सब मिल जाता है। इससे प्रतीयमान होता है प्राचीन काल से श्री जगन्नाथ प्रणव उपासना की प्रतीक रूप में ही विराजित थे।

	प्राचीन सांकेतावलि	काल	स्वरूप	न्यासचित्र
१	खण्डगिरि, ॐर, तथा परमार लेख सांकेत।	ई.पू. १ म शतक		
२	ऐर त्रिककुद सांकेत खारवेल अभिलेख।	,,		
३	ॐरगड़-गुहा सांकेत। अशगड़, उल्लांग।	,,		
४	विहार परखम् मूर्तिविष्णुस्थ सांकेतलिपि।	ई.पू. २ य शतक.		
५	जउगड़, अल्लाहाबाद स्थ अशोक कालीन त्रिबिन्दु	ई.पू. ३ य शतक		
६	गेडगाला, स्तंभ लिपि का सांकेताक्षर।			
७	समुद्रगुप्त का मुद्रा मे अंकित पवित्र सांकेत	ई ३ य शतक		
८	महाभवगुप्त जन्मेजय ताम्रलिपिका प्रणव:			
९	सांचितोरणाङ्कित बौद्ध त्रिरत्न सांकेत।			
१०	ब्रह्मेश्वर शिलालेख उद्योत केशरी कालीन प्रणव			
११	प्राचीन ग्रामीण मूर्ति मे प्रणव (शाबर)			
१२	तान्त्रिक प्रणव या अमूर्ति			

१३	लिपिकानाम प्राचीन	काल	अउम	फलक २ न्यासाकृति
१४	प्राचीन ब्राह्मीलिपि	ई॰ पूर्व ३००	[illegible]	
१५	परवर्ति ब्राह्मीलिपि	ई.पू. १ मशतक	[illegible]	
१६	विग्रह वंशिय लिपि · कणास्र ताम्रशासनोक्त	ई ४ र्थ शतक	[illegible]	
१७	वल्लभिलिपि	ई ५ म शतक	[illegible]	
१८	खरोष्ठिलिपि	५ म शतक	[illegible]	
१९	कांगोद शैलोद्भवलिपि	ई ६ ष्ठ शतक	[illegible]	
२०	मध्ययुगीय लोबालि लिपि अनन्त वर्म श्रीलाल्लम	ई ९ म शताब्दि 105-1 AD	अउम	
२१	कोशलोत्कल कुटिललिपि वज्रहस्त ताम्रपट्ट	ई १० म शताब्दि	अउम	
२२	गगकालीन कुटिल लिपि	ई १४ श शतक	अउम	
२३	पल उड्लिपि	ई १५ श शतक	[illegible]	
२४	प्राचीनदेव नागरि लिपि	ई १६ श शतक	[illegible]	
२५	कारणि लिपि, उड्	ई १७ श शतक	[illegible]	
२६	प्रचलित, उड्लिपि,	ई १२ श सतक	[illegible]	
२७	प्रचलितदेवनागरिलिपि		अउम	

प्रतिपादित हुआ। जड़ चेतन में कोई अन्तर नहीं है अर्थात् "जड़ वै चैतन्यः" हिरण्यकषिपु ने कहा है—

विद्याः कलास्ते तनवश्चसर्वा हिरण्यगर्भेसि बृहत् त्रिपृष्ठः ॥

ऐसी ही प्राचीन ब्रह्म विचारधारा का प्रतीक पुरुषोत्तम तत्त्व में प्रतिफलित हुआ था।

वैदिक साहित्यों में प्रतीक विद्या ऐसे प्रणव के रूप में प्रकट हुई है जैसे 'महानारायणोपनिषद्' में। अनन्त कोटि ब्रह्मांडकर्ता नारायण पुरुष का एक महान् वर्णन प्रतीत होता है। उस प्रतीक विद्या के मनन के समय उनको छोड़ देना समुचित नहीं होगा, कारण यह वर्णन नारायणात्मक प्रतीक वस्तु का निपुण वर्णन है।

ॐ अनन्त अव्यय कवि समुद्रेऽन्तः विश्वतोमुखः। पद्मकोष प्रतीकांश हृदयश्चाप्यधोमुखं अधोनिष्ट्या वितस्त्या तु नाभ्यांमुपरितिष्ठति। हृदयं तद् विजानीयात् विश्वस्यायतन् महत्, सतत् शिराभिस्तु लम्बवत्या कोष सन्निभ, तस्यान्ते सुषिरं दिव्यं सूक्ष्मं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्य मध्ये वह्निशिखाः महामग्नि विश्वार्चि विश्वतोमुखः समग्रभुग् विभजन् तिष्ठन्ऽनाहारमजर कवि। तिर्यक् ऊर्ध्व अधोशायी रश्मयः सन्ततासन्तापयति स्वदेह आपादतलमस्तकम्। तस्य मध्ये वह्निशिखाः अणियोर्ध्वा व्यवस्थितं नीलतोयद मध्यस्थ विद्युत्लेखभास्वराः नीवारां. शुकवत् तन्वी पीता भास्वत अणुपमा, तस्य शिखायां मध्ये परमात्मा व्यवस्थितम्। स ब्रह्माः स शिवः स विष्णुः सेन्द्रः सोक्षर परम स्वराट स ऋष स सत्य परंब्रह्म पुरुष कृष्ण पिंगलम्।"

(महानारायण उपनिषद्)

यह महान् वर्णन न नारायण का, न किसी तत्त्व का यह सम्पूर्णतया एक प्रतीक विग्रह का है। जिसको निर्गुण तथा सगुण अभिव्यक्ति स्वरूप में वैदिक मन्त्र-द्रष्टा महानारायण पुरुषोत्तम का प्रतीक तत्त्व प्रकाश किया है। मैं ऐसे एक उपास्य का परिचय वैदिक भाषा में दे रहा हूं जो सीमारहित (अनन्त) क्षुर्णता से परे, (अव्यय) जो (कवि) जव देखो तव लगता है बोल पड़ेगा, समुद्र के तट पर रहते हैं। मुख में समग्र विश्व का आभास है। (समुद्रेऽन्त विश्वोतोमुख) पद्मकोश सहित कमल पुष्पाकृति। हृदय देशानुरूप आकार वह पद्मनिम्नमुखाकार, पद्माग्र-पर्यन्त विस्तृत है। **पद्मकोष प्रतीकांश हृदयश्चाप्यधोमुखम् अधोनिष्ठया वितस्त्या।**

द्वादशांगुल परिमित (वितस्ता) स्थान पर एक अंश नाभिस्थल है। उसी के ऊपर हृदयस्थल है। यह स्मरण रखो (**हृदय तट विजानीयात्**) वह विश्व का महान् निवास अर्थात् पवित्र सदन है।

(**विश्व स्थायतन महत्**) स विश्व का प्रतीक जो कि सर्वदा मस्तक के लिए ख्यात है। उत्तिष्ठाकृति **विश्वंसतत् शिरोभिस्तु लम्बत्या कोष** कमल कोष की आकृति में, इनके शीर्षदेश में बहुत सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवर (**सुषिर**) विद्यमान है। इस स्थल में समग्र रहस्य (गुप्त रूप में) प्रतिष्ठित हैं। उनके अन्दर पवित्र अग्नियों की यज्ञाग्नि के प्रतीक रूप में हैं। (**महामग्नि विश्वार्चि**) व विश्वतोमुख स्वरूप है, सर्वभक्ष है। पूजन किया जाता है यहां पर (**विभजन् तिष्ठन्**) बहुत विधिपूर्वक। सब भोजन करते हैं ये, परन्तु वास्तव में भोजन क्रिया नहीं करते हैं। अजन्मा भाव व्यक्त करने वाला (**भजर कवि**) उस अग्नि देश से तिर्यक् ऊर्ध्व स्थल में अधोमुखी किरण पुंज विद्यमान है (**शशि-सूर्यके समान**) जो कि विग्रह के शरीर को उत्तप्त करती है। आपादतलमस्तक अर्थात् उनका तेज समूह उनके ऊपर भी विद्यमान है। (नेत्र युग्म के रूप में शशि सूर्य की आकृति) दोनों नेत्रों के बीच में एक वह्नि दिशा शीर्ष भाग में प्रतिपाद होती है जैसे कि नीलवर्ण जल के मध्य देश में विद्युत् का स्वरूप चमकता हो। (नील **तोयद मध्यस्थ नीवारांशुकवत्तन्वी**) नीवार बीजाकृति तन्वी शरीर की शीर्ष शोभा के स्वरूप तथा रंग केसरिया है। अनुपम अणुपमा **सुक्ष्मातिशय शालित्वाद् अणु एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य इति**। (मुण्डकउपनिषिदे)

उनके उर्ध्व देश के सम्पूर्ण बीच में परमात्मा तेजोमय शीर्ष बिन्दु के रूप में विराजित है। ऐसा ही परमात्मा, सर्वदेवमय सृष्टि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, स वर्णोत्तम (**अक्षर ॐकार**) सारे जगत् के नाथ (**स्वराट**) अतुलनीय नित्य और सत्य स्वरूप परब्रह्म श्री **जगन्नाथ** प्रभु हैं। उनका शरीर कृष्ण तथा आरक्त उभय रंग का है। अर्थात् शरीर में चरणों से मुख तक पिंगल वर्ण तथा मुख मण्डल कृष्ण वर्ण है। यह वर्णन कौन से नारायण का है? आज तक कोई यह निर्णय करने में समर्थ हुआ है? परन्तु प्रत्येक शब्द सम्पूर्ण रूप में प्रतीक विग्रह पुरुषोत्तम जगन्नाथजी के साथ मिल जाता है।

महानारायण उपनिषद् का यह प्रतीतात्मक वर्णन मुख्यतः सहस्रार चक्र का वर्णन है। जो कि पुरुषोत्तम प्रतीक विग्रह में युक्तियुक्त रूप में

प्रतिफलित हुआ है। उसी विषयवस्तु को (Anatomy of Human Body) शरीर तत्त्व के भीतर सम्यक् अवलोकन किया जाता है। और इसी से प्रतीत होता है कि उपनिषदों की विचारधारा कैसी अपूर्व है। मस्तिष्क और उसकी नाड़ियों के सम्मुख (Mental View) से प्रतीत होता है कि वह भी अधोमुख पद्म का आकार है। ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना (Spinal Cord) के अंत भाग से शीर्षवाद (Medulla Oblangata) प्रारम्भ होता है। इसके ऊपर पृष्ठ मष्तिष्क (Cerebellum) विद्यमान है। वह सर्वचेतन शक्ति का केन्द्र है जहां ब्रह्मोपलब्धि की जाती है। उसके ऊपर देश में समग्र मुखमण्डल के तेजपुंज का केन्द्र विराजित है। जिसे उपनिषद् तथा रसमय और शरीर तत्त्व (Anatomy) कहता है Pons। उपनिषद् कहता है—चन्द्रसूर्यात्मक तेज यहां से प्रकट होता है। Pons के ऊपरी भाग में नेत्र पुंज का ज्योतिचक्र अवस्थित है। इसका नाम Ocelomotor है। जिसका आज्ञाचक्र के साथ सम्वन्ध है। इसके थोड़ा ऊपर 'नीवारांशुकवत् विद्युत् लेख भाश्वर' विद्यमान है। इसे Anatomy में Optic Nerve कहते हैं। उपनिषद् कहता है इनका आकार नीवारधान्य के स्वरूप का है और Anatomy के हिसाव से Cross की तरह है। इसमें से उपनिषद् का आकार धान्य का पार्श्व दृष्ट और Anatomy के अनुसार धान्य का पृष्ठ दृष्य। इसी परिमंडल में योगी परमात्मा के साथ मिल जाता है। इसी परिमंडल से सर्वशक्ति मुखमण्डल तथा शरीर में प्रतिभासित होती है। योगी लोग इसे अलेखपुर कहते हैं और इनकी दृष्टि से पुरुषोत्तम श्री जगन्नाथ अलेख रूप हैं।

चित्र को ध्यानपूर्वक देखने से मन तृप्त हो जाता है। क्या इसी से प्रतिपादित नहीं होता है कि पुरुषोत्तम मूर्ति भारतीय संस्कृति में निर्गुण तथा सगुण चिन्तन के मध्यवर्ती स्वरूप में जगत् में अद्वितीय नहीं है? जो कि महानारायण भाव से आर्य विचारधारा में उपनिषदीय भाषा में प्रकाशित हुआ है।चित्र सं० ५

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्योदिशंश्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः
वायूप्राणो-हृदय विश्वमस्य पद्भ्यां पृथ्वीऽयष 'सर्वभूतान्तरात्मा।'

(मुण्डक उपनिषद्)

गीता में वही भाव पुरुषोत्तम लक्षण रूप में व्यक्त हुआ है। उसी कृष्ण पिंगल रूप को परवर्ती श्रीमद्भागवत महापुराण ने भी स्वीकार

किया है। पुरुषोत्तम या महापुरुष भाव को श्रीमद्‌भागवत के एकादश स्कन्ध, पंचम अध्याय के ३१-३२ श्लोक में कलियुग के उपास्य देव वर्णन के रूप में प्रकट किया है। भागवत के विचार में यह मूर्ति एकाधार में कृष्ण और शुक्ल वर्ण की है। निम्न भाग श्री राधाजी के महाभाव में शुक्ल वर्ण और ऊर्ध्व भाग रसराज श्री कृष्ण के रूप में कृष्ण वर्ण दोनों को मिलाकर युगल रस रसामृत की कल्पना की गई है। भागवत में कहा है यह मूर्ति अपने चतुर्व्यूह **वासुदेव नारायण प्रद्युम्नानिरुद्धात्मक** स्वयं रूप में चतुर्धामूर्ति का समष्टि है। ऐसा विष्णु पुराण ने कहा है :

ब्रह्मात्मानं चतुर्धा वै वासुदेवादि मूर्तिभिः।
सृष्ट्यादीनि प्रकरोत्येष विश्रुतात्मा जनार्दनः॥

(शंकर भाष्ये)

भाष्यानुसृत जगन्नाथ वलभद्रादि चतुर्धा मूर्तियों को सांगोपांग मूर्ति अर्थात् कृष्ण वासुदेववाद की रहस्यमय मूर्ति रूप में भागवत में ग्रहण किया है। जो कि पुरुषोत्तम चिन्तन में सांप्रतिक स्वरूप में विद्यमान है।

इति द्वापर उर्वीशं स्तुवन्ति जगदीश्वरम्। (जगन्नाथ)
नाना तंत्र विधानेन कलावापि यथाश्रृणु॥
कृष्णवर्णत्विषाकृष्णं सांगोपांगास्त्र पार्श्वदम्।
यज्ञैः संकीतनैर्दान्यै पूजयन्ति सुमेधसः॥

अर्थात् युगधाम के विग्रह रूप में जगदीश्वर जगन्नाथजी को प्रत्यह यज्ञ (नित्यहोम) संकीर्तन के द्वारा, दान (प्रसाद दान के द्वारा) पूजन करते हैं सुमेधस, भक्तगण। उससे प्रतीत होता है। युगोपासित स्वरूप में श्री जगन्नाथ वलभद्रजी, सुभद्रा जी तथा सुदर्शन (सांगोपांग अस्त्र) रूप में विराजित हैं। कृष्ण वासुदेववाद का यह रहस्य नारदीय पंचरात्र के अनुसार भी प्रतिपादित है। इन जगदीश्वर को बुद्धिमान व्यक्ति (सुमेधसः भक्तगण) यज्ञ, संकीर्तन के द्वारा पूजन करते हैं। भागवत में स्पष्ट लिखा है कि यहां तंत्र विधान की पूजा चलती है जिससे स्पष्ट होता है कि कलियुग का युगधाम श्री जगन्नाथ महा-नारायण रूप में सम्पूर्ण त्रिमूर्ति है जो कि प्रणव का ऊँ तत् सत् ब्रह्मण त्रिविधि वपु के अनुरूप है। इसमें श्री जगन्नाथ साक्षात् ॐकार हैं।

यदाहं वसुधासर्वं सत्यमेव दिवौकसः।
अहं भवो भवन्तं सर्वनारायणात्मकम्॥

"सत्" आत्मा चैतन्य रूप वलभद्रजी और "तत्" अक्षर पुरुषात्मक विष्णु माया, "**सर्वस्वरूपा चिदात्मिका सुभद्रिका**", रूप में अभिन्न त्रिमूर्ति हैं।

देवि त्वं विष्णु मार्याऽसि मोहयन्ती चराचरम्।
तस्य शक्तिस्वरूपेण भगिनी श्री प्रकीर्तिताः।।

(स्क० पु० २६।७४)

परवर्ति वैष्णवागम के प्रभाव में प्रतीकवाद क्रमशः वैष्णवाचार के रूप में विदित हुआ है। परन्तु मुख्य वैष्णवागम नारदीय पंचरात्र पुरुषोत्तम को जगन्नाथ रूप में ग्रहण किया है।

नारदीय पंचरात्र में भगवान पुरुषोत्तम जगन्नाथ को समुचित रूप में परिचित करवाया है। इसलिए गंगसम्राट् चोड़गंगदेव अनन्त वर्मे पाञ्चरात्र विधि में जगन्नाथजी का पूजा प्रचलन किये थे। 'नारद पांचरात्र' के एक श्लोक से ही उसका अभिमत कितना उपादेय है, यह उपलब्ध हो जाता है।

प्रीणयेदनया स्मृत्या जगन्नाथ जगन्मयम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तते पुरुषोत्तम।।

नारदीय आगम में पुरुषोत्तम चेतना को आज भगवत रहस्यों के पंजर रूप में मर्यादा दी जाती है। '**भगवन्नमिद्युति पंजरं**' अर्थात् युग-युग से सुरक्षित तथा प्रतिष्ठित है ये भगवतभाव रूपक पिंजड़े में। अभी सुधी पाठक वर्गों के सामने सृष्टि रहस्य का सामान्य समीक्षात्मक वर्णन किया जाता है जो कि पुरुषोत्तम प्रतीक विग्रह में प्रतिभात हुआ है।

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत्। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रेऽर्णवः समुदार्णवादधी। सम्वत्सरोऽजायत्। अहोरात्राणि विदधत् विश्वस्य मिषतो वशी सूर्यो चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् दिवं च पृथ्वी चान्तरिक्षमथोस्वः। (ऋग्वेद)

वेद में वैदिक सृष्टि सूत्र से प्रतीत होता है पहले ऋतस्यधारा ऋषि मानस में थी। इसी को सत्य वोलकर ऋषि लोगों ने प्रकट किया। तपस्या के द्वारा उपलब्ध हुआ प्रथम रात्रि—रात्रि एक शून्यावस्था को कहा जाता है। तत्पश्चात् समुद्र—अर्णव महोदधि अर्थात् महान् जल-राशि ने महाशून्य को प्लावित किया। इसके वाद विश्वनियन्ता के विचार में कालचक्र आ गया जो तीनसो पंचषठ दिन का संवत्सर हुआ। इसके वाद प्रारम्भ हुई अहोरात्रि अर्थात् दिन और रात्रि। सर्वत्र

सहस्रार परे कोजे विरजंब्रह्म निष्कलं
परमात्मा व्यवस्थितं
कृष्णवर्ण
निवारशुकवत्
सूर्यमंडल
नन्दि
चन्द्रमण्डलम्
रस्मय:
महाअग्नि
मुखज्योति
ब्रह्मस्थलं
पिंगलवर्ण
सहस्रार
नाभि
अग्रभाग
शिश्नमृणान्त:
महानारायण उपनिषदीय प्रतीकचित्र
FRONTAL
CEREBELLER-CORTEX.
MAIN BRAIN
OPTIC NERVE
चक्षुज्योति
OCULLOMOTOR
ज्योतिमण्डल
V CR. N.
PONS
CEREBELLUM
MEDULLA.
SPINAL CORD.
मस्तिष्क नाड़ियों का सम्मुखचित्र।
सहस्रारचक्र:

चित्र संख्या ५.
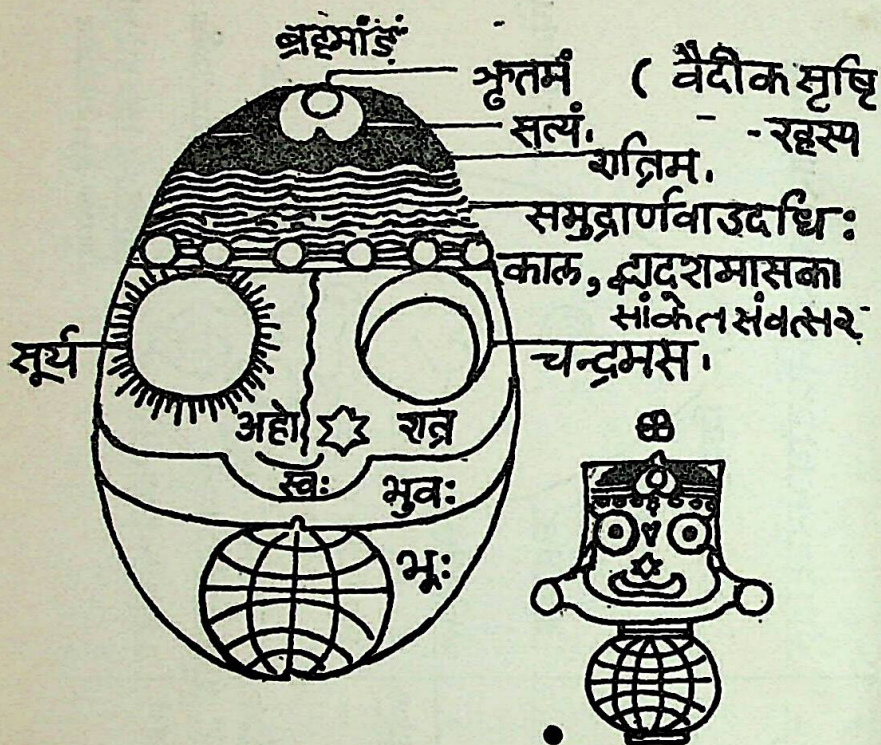
ऋतं सत्यंभयज्योतिः मौलिमण्डन शाश्वतं
महाशत्योपमाआस्यं यथापावृटमम्बरम् ॥
नेत्रसव्यं पूषा साक्षात् वामपूर्ण निशाकरः
मुख वै यज्ञ स्वर्गश्च, विश्वतोमुख रुपकम् ॥
अन्तरिक्षसमवक्षं नक्षत्र हार भुषितं
विश्वरूपं विश्वपादं स्मरामि जगदीश्वरम् ॥

श्रीशंकर 'शंकरानन्द पीठाचार्य जगद्गुरु श्रीधर स्वामीपादेन कृत मठाम्नाय-स्थ २य श्लोकः (टीकाकार श्रीधरस्वामी - स्वामी

• जगन्नाथजीके स्वरूपमे सारूप्यदर्शनीयः

चित्र संख्या ६—सृष्टि रहस्य

स्वतन्त्र नियन्ताने संसार सृष्टि के कारग चन्द्र और सूर्य की सृष्टि की। इसके वाद आई लोक कल्पना। चित्रद्रष्टव्य सं० ६

स्वलोक (स्वर्गलोक), अन्तरिक्ष लोक (खगोल लोक), भूलोक (पृथ्वी), इसी से अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, पातालादि उपलोकों को सृष्टि हुई। इस प्रतीक रहस्य की आलोचना से स्पष्ट होता है कि वास्तु सूत्र उपनिषद् का महावाक्य "प्रतीतात प्रतीकः" एक महान् सत्य है। इसलिए महर्षि पिप्पलादि ने कहा है।[1]

यत्र भावना शून्यो तन्निर्गुणं गुणत्व भावनाय सगुणं भवति सगुणात् मनः स्थूलं भवति। प्रतीतात् प्रतीक उस विचार में अंगुष्ठ मात्रा चिन्ता से लेकर यूप भावना तथा पुरुषोत्तम चेतना में वैदिक रहस्य सगुण विग्रह रूप तत्त्व को प्रकट किया है। वह अप्रकट रूप पुरुषोत्तम जगन्नाथ को केन्द्र करके भारतीय प्रतीक-विद्या की जननी रूप में लोक तथा शास्त्रों में प्रतिष्ठित है। गीता में कहा गया है। **लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तमः।**

जैनदर्शन में पुरुषोत्तम शलाकापुरुष त्रिपूपाकार प्रतीक रूप में मान्यता प्राप्त किया है। अथर्ववेद १०वें मण्डल में वर्णित स्कभदेवता, वैदिक प्रतीकवाद का स्वरूप तथा पुरुषोत्तम अप्राकृतविग्रह तत्त्व में प्रतिपादित होता है, कहा गया है स्कभ वा स्तभाक्तदेवता अत्यन्त प्रमुख है। **'बृहत्तो नाम ते देवा'** उस देवता सर्वदेवमय जिसमें त्रयत्रिंश देवता का समन्वय चिन्ता पर्यवस्थित है **यस्य त्रयत्रिंस्त्रिशदेवा अंगे गावाविभाजिरे।** जिनके चक्षुद्वय चन्द्रसूर्याकृति, मुख अग्निस्वरूप है और वह ज्येष्ठ देव नाम में प्रसिद्ध है अर्थात् ब्रह्मवाचक हैं।

यश्चसूर्यश्चक्षुश्चंद्रमाश्च पुनर्णव।
अग्नियश्चक्र आस्य तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ (१०-४-३३)

व स्तंभाक्त देवता समुद्र के तट पर विराजित है और सनातन काल से उपासित हो रहे हैं।

'सलिलस्य पृष्ठे' यो देवमुचरावन्तमुपासते सनातनम्।

वही स्तभस्वरूप प्रतीक विग्रह ही पुरुषोत्तम चेतना का प्राणाधार तथा पुरुषोत्तम विग्रह का निराकार-साकार उपासना का मध्यवर्ती

---

१. वस्तु सूत्र उपनिषद्—प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, सम्पादक : पंडित सदाशिव शास्त्री, डॉ० एलिस बोनर, डॉ० व्यूमर।

वैदिक प्रतीकवाद का प्रतिभू है। आर्य भारत का एक समन्वयात्मक रूप है। उनको बारम्बार प्रणाम ।।

पहले अथर्ववेद का स्कम्ब रहस्य व्रात्यओं को अनुप्राणित किया था। स्तम्व में व्रात्यओं ने सूर्य चन्द्रात्मक चक्षु आदि ज्योतिर्मय वस्तु की कल्पना किये थे।

अथर्ववेद में उल्लेखित है—

"तस्य व्रात्यस्य यदस्य दक्षिणमक्षसौ यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमा येदृसं दक्षिण कर्णेदृय सो अग्निर्वेदस्य कर्णेदृयस पवमान।" १५-१८-३

इसके वाद शबरों (किरातों) ने उस स्तम्वाकार विग्रह को शावरतन्त्र मत से पूजा किये, स्तम्व—कीलपुरुष रूप में ख्यात हुआ, समग्र भारतों से आदिवासियों की विशिष्ट मूर्ति सभीयों स्तम्बाकार, खिलमुण्डा, दादि, उबु, काठि महाप्रभु आदि देवताओं को पूजक-जानिओं आदि-ब्रात्य, वहां से तन्त्र यूपाकार उस उस मूर्ति को लेकर स्तम्वेश्वरी, महीमयी, नील दुर्गा प्रभृति नाम देकर उपासना किये, उसकी एक महान परम्परा है।

अपूर्वनेत्रम्
(विश्वतश्चक्षु)

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायतः ।
(श्वेताश्वतर उपनिषद)

वेद भगवान् कहते हैं—विराट पुरुष का चक्षु पूर्णचन्द्र तथा सूर्य तुल्य है जो कि लोकनेत्रों से सम्पूर्ण भिन्न है।

प्रवचन स्थान—बा पामा चारणीय सतसंग
तारीख—२६-८-८२

अपूर्वनेत्र

भाव हृदय के अन्दर से जाग्रत होकर सर्वप्रथम आंखों में आत्म प्रकाश करता है। बाद में वाक्रूप में प्रकट होता है। इसीलिए नेत्रों को रूपतत्त्व में सबसे गरिष्ठ माना है। चित्र कलाकार चित्र निर्माण के शेष कृत्य रूप में नेत्र बिन्दु प्रदान करके भाव मूर्ति को सार्थक करता है। इसीलिए भारतीय संस्कृति में दृष्टि रहस्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। योगी भ्रू-मध्यस्थ बिल में जब नेत्र आवद्ध करता है तब उसे **'नासाग्र दृष्टि'** कहा जाता है। योगी एक बिन्दु में अपनी दृष्टि आवद्ध करके लय योग द्वारा परमात्मा के साक्षात्कार का लाभ करता है। उसे ज्ञानी गणों ने **त्राटक दृष्टि** नाम दिया है। विह्वल अधखुले नेत्रों से प्रेमधारा प्रवाहित होती है। जयदेव जी ने इसे **मुग्ध नेत्र** कहा है। रसिकजनों का इन नेत्रों के साथ निविड़ सम्बन्ध है। श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन को, विराट स्वरूप दिखाने के पहले, 'दिव्य चक्षु' प्रदान किये थे। **दिव्यं ददाति ते चक्षुः।**

जिसके प्रभाव से अर्जुन ने विराट तत्त्व को उपलब्ध किया, जो नेत्र सिद्धों का सर्वस्व है। इसी को केन्द्र बनाकर कितना आत्म दर्शन उपनिषद् काल में प्रकटित हुआ है। यह दृष्टि प्रभु किसको कब देते हैं, उसका अनुमान लगाना कठिन है। पक्षी मात्र जन्म के कुछ क्षणों के उपरान्त ही नेत्र खोलकर मातृ मुख का अवलोकन करते हैं। व्याघ्र, बिल्ली तत्क्षणात उन्मीलित नेत्र से वंचित हैं। गौ, महिष, अश्व, जरायु मुक्ति के साथ-साथ दृष्टि शक्ति लाभ करते हैं। इस सुयोग का महान् अधिकारी मनुष्य है। मानव शिशु की प्रथम लोलुप दृष्टि अपनी मां के वक्षस्थल में स्थित रहती है। और महाक्षुधा की तृप्ति हो जाती है। इसीलिए दृष्टि के साथ तथा नेत्रों के साथ मानव जीवन मूल से अन्त तक जड़ित है। नेत्र का काला बिन्दु निश्चल हो जाने पर मानव का परमपद स्वीकृत होता है। ऐसे ही जीवन काल में बहु प्रकार के नेत्रों के सम्बन्ध में आकर अपने को अभिज्ञ दृष्टि सम्पन्न सोचता है।

इन्द्रियों के प्रभाव से नेत्रों की संज्ञा भी परिवर्तित होती है। कामी जनों के नेत्र मदिकल मदिराक्षी शब्द के साथ यथेष्ट परिचित है। क्रोध

का प्रतीक नेत्र घुर्णनशील है। लोभ नेत्र का नाम लोलुप दृष्टि। मोह के नेत्र रहते हुए मुद्रितावस्था की प्रतीक होती है। ऐसे ही कई प्रकार के नेत्र मानव अनुभव करता है। इसकी कोई संख्या नहीं है। इसी नेत्र को लेकर जीव जन्तुओं के नेत्रों का तुलनात्मक अध्ययन करके काव्य शास्त्र वर्णनाधनी माना जाता है। शनिदेव के वाहन गिद्ध की दृष्टि का नाम तीक्ष्ण दृष्टि। गिद्ध बहुत दूर से मृत वस्तु को अनायास में देख लेता है। इसीलिए इसके नेत्रों का नाम काल नेत्र है।

भगवान मार्कण्डेय कहते हैं दृष्टि या चक्षु का विचार सृष्टि का एक महान् वैचित्र्य है। कई प्राणी दिन में देखते हैं और कितने ही रात्रि में। और कितने ऐसे हैं जो दिन-रात्रि दोनों में देखते हैं।

दिवान्धा प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनः तुल्य दृष्टयः॥

(दुर्गा सप्तशती)

दृष्टि ही सृष्टि का सर्वप्रथम उन्मेष, प्राणीमात्र की सर्वप्रथम सम्पत्ति है **'चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने, ॐ नमः सवित्रे जगदैक चक्षुसे।'**

जगत् चक्षु दिवाकर के जाग्रत होने से प्राणी मात्र जाग्रत होते हैं। निशा निद्रा तिरोहित होती है। ज्ञान विकसित होता है। अस्तमिति होने से दृष्टि नियमित होती है। सुदूर देश में आवास काल में देश-दूरान्तर का अनुभव निद्रा दृष्टि में आता है। इसीलिए दृष्टि काल का प्रतीक है। रात्रि में उलूक की अशुभ दृष्टि जाग्रत होती है। मनुष्य जिसे देखने से आतंकित हो जाते हैं। जैसीकि इनकी दृष्टि भविष्यतसूचक है। बगुला अपने खाद्य के लिए अपनी एकाग्र दृष्टि डालता है। जो कि मनुष्यों को ध्यान दृष्टि के साथ तुलना योग्य हुई है। **'बक ध्यानः तथैव च'**! हंस के नेत्रों को तुरीय नेत्र व दृष्टि को मुग्ध दृष्टि माना गया है। भारतीय संस्कृति और दमयन्ती ने इसी को भाव में लिया है। कविगणों ने नेत्रों को लेकर कला सृष्टि की है। मच्छ के समान सुन्दर तरल नेत्रों ने किसी को आकर्षित किया और किसी को लीला खेला खंजरीट चंचलाकार विशिष्ट नेत्र आकर्षित करते हैं। किसी-किसी को मृग के चकित सचेत नेत्र। दिव्य पुरुष पद्म की जाग्रतावस्था की तुलना नेत्रों के साथ की जाती है। काक के नेत्र जाग्रत नेत्र के प्रतीक हैं। मां धूमावती ने काक (कउआ) को अपने ध्वज का प्रतीक माना है। हम लोग इसे त्रियंक दृष्टि कहते हैं। रात्रि काल में मार्जार-नेत्र

का काला बिन्दु गोल हो जाता है। विचित्र है इन नेत्रों की सृष्टि। कथित है मयूक और मयूरी का संगम नेत्रों से ही होता है। मयूरी मयूर के नेत्र से निर्गत स्वेद पान करके गर्भवती होती है। नेत्र को मर्यादा देने के लिए ही हर पुच्छ के अग्र भाग में feather eye स्वीकार की गई है और मेघाच्छन्न दिनों में नृत्य करके मयूर पुच्छ समूह प्रदर्शन करता है प्रेम पुरुषोत्तम कृष्ण शिखिपुच्छ को प्रेम का प्रतीक रूप में स्वीकार पूर्वक मुकुट पर अलंकृत किए हैं।* कटाक्ष नेत्र कई कामियों को पागल कर चुके हैं। पुनः बिल्व मंगल को चिंतामणि वेश्या के कटाक्ष नेत्रों ने आदमी बना दिया। वो नेत्रहीन होते हुए भी असली नेत्रों के अधिकारी हुए। भागवत कवि श्री सूरदास अन्धों के व्यापक नाम के प्रतीक हो गए। चक्षु न होते हुए भी उन्होंने प्रभु का रूप लीला वर्णन जो किया है वह अभिज्ञ नेत्र वाले कवि भी नहीं कर सकते हैं। सूरदासजी की रचनाएं नेत्र युक्त मनुष्यों के विचार में प्रामाणिक मानी जाती हैं। अमंगल दृष्टि का विचार लेकर गांधारी चिर दिन नेत्रों में पट्टी बांधकर रही जो सहज नहीं है। भगवान मंगलमय शिव के ऊर्ध्वनेत्र को देखने से कौन प्रमुदित नहीं होता है ? यह नेत्र शून्य देश का निर्देश देता है। कृष्ण पुत्र शाम्ब्र मातृगणों के ऊपर दूर से भ्रम के कारण पाप दृष्टि निक्षेप करके शापग्रस्त हुए। गलित कुष्ठ रोग से आक्रांत हो गए। आज के आधुनिक युग में वह दृष्टि कैसी है आज हम सब जानते हैं। समाज की प्रत्येक सुन्दरी आज मानव की इस दृष्टि के कवल में आक्रांत है।

स्त्रियासमस्ता सकलजगत्सु त्वयीकया पूरितमन्यैतत्।

समाज से विलुप्त हो रही है। शुभ्र नेत्र पटल के ऊपर काली पुतली की करामत भावधारा को हिला देती है। ऐसी ही अनन्त चक्षु तत्त्व के भीतर देव-देव जगन्नाथ जी के नेत्र प्रत्येक मन में विस्मय की सृष्टि की है। कैसे विचित्र नेत्र हैं ये ? आप जहां भी हों ऐसा लगता है कि ये नेत्र आपको ही ताक रहे हैं। जैसे क्षिप्रपक्षी कपोत आकाश में अत्युच्च स्थान से छोटे तिल को देख लेता है वैसे ही भगवान् श्री जगन्नाथ के नेत्र भक्त कहीं भी हो, इन्हें प्रेम दृष्टि से देख लेते हैं। श्री जगन्नाथजी के विग्रह में मुख्य इन्हीं के वृत्ताकार नेत्र 'चका डोला' है। नारदजी ने इन नेत्रों को विश्वाक्ष्य कहा है। ना० उ० १३।१. क्या है इन नेत्रों में जो क्षण भर के लिए जगत् को भुला देता है। ऐसा लगता है जैसे विकसित पद्म में एक भ्रमर बैठा हो। महाभारत में इसे शुभेच्छण माना गया है।

विचार से प्रतीत होता है प्रत्येक नेत्र में पलकें गिरती-उठती हैं। पर श्री प्रभु जगन्नाथजी के नेत्रों में पलक नहीं हैं। इन अपलक नेत्रों में एक विचित्रता अवश्य है। कुछ काव्य कहते हैं 'भक्तों के लिए उन नेत्रों का भाव बहुत विचित्र है। भगवान् के पास कलियुग में कोई आर्त भक्त कभी भी आ सकता है। यदि नेत्र बन्द रहेंगे तो भक्त निवेदन न करके वापस चला जा सकता है। इसीलिए भक्तों के लिए भगवान् ने कलियुग में पलक विसर्जन कर दिया है।' कुछ लोग कहते हैं 'कलियुग में अघटन घटन देखकर अघटन घटन पट्टियसी के नेत्र स्थिर हो गए हैं।' जितने प्रकार के नेत्रों के विषय में हम लोगों ने विचार किया है उसमें काली पुतली के चलने से नेत्रों के विभिन्न भाव प्रकट होते हैं। परन्तु प्रभु जगन्नाथजी के नेत्र बीच में स्थित है। जिधर भी देखो समान व्यवधान है। अपिच् दृष्टि भयानक नहीं, मधु नितमधुर लगते हैं। अनुभव होता है समस्त जगत् के नाथ स्वामी जगन्नाथ समस्त जगत् को समान अपलक नेत्रों से देख रहे हैं। इन नेत्रों को वेदों ने भी स्वीकार कर लिया है। नेत्र या दिव्य दृष्टि का वेद में **'सदा पश्यन्ति सूरयो'** रूप में वर्णित है। अशोक कालीन चक्षु रूप में जगन्नाथजी के नेत्र स्वरूप संकेत को ही ग्रहण किया गया है।

(The Gorpus Inseripition Indiearum Plxxviii.)

"वह आयत चक्षु और विस्तार चक्षु है" अपामार्जन सूत्र में वह नेत्र **मेहरणाय चक्षु** के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें जल तत्त्व का निवास है। साधारण दृष्टि से यह अश्रु और प्रभु के पास इसका नाम भावधारा है। वेद भगवान् सूर्य नारायण को नेत्र रूप में लेकर कहते हैं **जगच्चक्षू दिवाकारः** अर्थात् वह चक्षु आस्तिकों के लिए मंगलप्रद है। और एक रहस्य है—परिपूर्णतम ब्रह्म के नेत्र भी परिपूर्ण होने चाहिए। **"पूर्णात् पूर्णमुदिच्यते"** अतएव जगत् के उन सौन्दर्य नेत्रद्वयम् सम्पूर्ण निरपेक्ष नेत्र हैं। ऊपर, नीचे, और दो पार्श्व को समान रूप से व्यवधान रखकर सम्वत्सर स्वरूप ३६० डिग्री का आवृत्त है। उस सम्वत्सर का काल स्वरूप मेरु बिन्दु श्री भगवान् के कृष्ण वर्ण की पुतली है। ऐसा आर्य संस्कृति में माना जाता है। उन वृत्ताकार नेत्रों में तीन नेत्रांग हैं। एक रक्तवर्ण वृत्त, बीच में सफेद रंग का नेत्रपट और कृष्ण वर्ण निश्चल बिन्दु। बिन्दु अचल ब्रह्म का प्रतीक, सफेद अंग जगत् या संसार चक्र और लाल परिधि वृत्त माया है। अर्थ हुआ ईश्वरी माया

समावृत संसार का ध्येय ब्रह्म है। उस ब्रह्म को "यः पश्यति सः पश्यति" जो देखता है इसी को भव्य दृष्टि कहा जाता है।

प्रभु श्री जगन्नाथजी के नेत्रयुग्म जगत् में सबसे उदार अमीय अमृत दृष्टि के प्रतीक हैं। इनके आकर्षण में आदि शंकराचार्यजी की ब्रह्म सत्य धारणा चहल गई। वो नेत्र सर्वदा इनके वाक्यों में "जगन्नाथ स्वामी नयन पथगामी भवतुमे" बनकर रह गया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन्हीं नेत्रों से अपने नेत्र संयुक्त करके पत्थर को भी पिघला दिया। तथा प्रभु के मुकुट पर शिखिपुच्छ दर्शन करके प्रेममय हो गए थे। परमहंस ठाकुर श्री रामकृष्णजी ने, इन नेत्रों के सामने से अपने को बचाकर दूर से ही भाव के द्वारा जगन्नाथजी के दर्शन कर लिए। इसी दृष्टि को शाश्वत कहा जा सकता है। यही निरालम्ब नेत्र सबका कल्याण करें, प्राणवन्त करें, यही आज श्री जगन्नाथ प्रभु के श्री चरणों में प्रार्थना है।

---

* मयूरपुच्छ को भगवान् सच्चिदानन्द प्रेममय श्री कृष्णचन्द्र अपने मुकुट पर धारण करने का रहस्य भी आलौकिक है। योगिराज अच्युतानन्द कहते हैं कि मयूरपुच्छ का अग्रभाग व पुच्छाग्र भगवान् श्री कृष्ण ब्रह्मभाव के प्रतीक रूप में धारण किए हैं। कारण शिखिपुच्छ की आकृति सम्पूर्ण ओंकार की आकृति है। नाना वर्णमय ओंकार जैसा अनुभव में दिव्यानन्द देता है और अकार, उकार, मकार रूपक की किरणों को प्रकाश करता है यह शिखिपुच्छ के बीच में है। इसीलिए ओंकार ब्रह्म को प्रतिपादित करने के लिए शिखिपुच्छ को श्रीकृष्ण भगवान धारण किए हैं।

प्रणव शिखिपुच्छाग्रे त्रिरावर्तं मनोहरम्,
नानावर्णमयरम्यांनाहत ज्योतिवत् हरिः।
धारयन्ति किरीटाग्रे सर्वाकर्षणविह्वलम्,
योगेश्वरं परं ब्रह्म गोपालसर्वपालकः॥

(ओगाल, १५)

वास्तव में शिखिपुच्छ भक्तों का प्रेम का संकेत ही है।

स्मृति निर्देश का व्यतिक्रम

स्मृतिश्च भिन्ना श्रुतयश्च भिन्नः।
नाना मुनीनां मतयश्च भिन्नः।।
धर्मस्य पन्थां निहितं गुहायां।
महाजनो येन गतः स पन्था।।

—महाभारत

राजा चतुर्विधा वर्णाः
अन्ये ये च पृथक्जनाः
दीनां महान्तश्च तदा
समानस्तत्र भान्तिवै
स्कन्दपुराण ३३।४१

स्थान—सेरिटोज, कैलीफोर्निया
यू० एस० ए० कोष्टामेखा,
रामकृष्ण योगाश्रम का प्रवचन
तारीख—२५-८-८२

स्मृति निर्देश का व्यतिक्रम

मानव धर्म शास्त्र तथा अष्टादश स्मृति भारतीय सामाजिक जीवन की श्रृंखला और सहावस्थान को सूचित करने के लिए रचित हुई थी। यह निश्चित है कि सामाजिक नियम, रुचि, देश, काल और पात्र को लेकर परिवर्तित होते हैं। इसी दृष्टि से स्मृतिकार धर्मशास्त्रों का प्रणयन करते हैं। परन्तु यह उद्यम बोधगम्य नहीं होता है। इसीलिए स्मृति कभी भी सर्वमान्य नहीं हुई है। स्मृति वाक्यों को अपने सुयोग और सुविधा के अनुसार लगाने का सुयोग होता है। इसीलिए निष्ठा-वान आध्यात्मिक व्यक्ति स्मृतियों के प्रति अपनी आंतरिकता प्रकाश नहीं करते हैं। इसीलिए समाज में यही मनोवृत्ति प्रतिफलित होती है। देशान्तर में देशाचार स्मृति से भिन्न हो जाता है। जैसे मिथिला, अंग, बंग, कलिंग में मच्छाहार आचार के अन्तर्गत माना जाता है, अन्य देशों में नहीं। शीत प्राधान्य हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश में चर्म पादुका पहनकर जल लेने का आचार प्रचलित है। अन्य प्रान्तों में नहीं है। दक्षिण भारत में मातुल कन्या से विवाह करना प्रचलित है। ऐसी ही भिन्नता स्मृति की उदारता में विकार दिखाता है। स्मृति में जाति विचार मुख्य है। वर्णाश्रम धर्म में श्रृंखला विधायक है। परन्तु श्रृंखला के स्थान पर घृणाभाव ही देश की आध्यात्मिक भावना को विपन्न किया है। कभी-कभी समाज बन्धन भी इसीलिए दुर्बल हो जाता है। हम लोग जिसे प्रामाणिक धर्मग्रन्थ मानते हैं और उपदेश को श्रेष्ठ मानते हैं इनके विचार में द्विधाभाव आ जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है **"अध्यात्म सर्वस्व ब्राह्मण, शरीर सर्वस्व क्षत्रिय"** किन्तु आचारहीन अन्य वर्गों को भी अयन्त्र भक्ति से भगवान् के चरणारविन्द की सेवा करने का कोई विरोध नहीं है। यदि कोई अनाचारी निष्ठा के साथ भगवान् की सेवा में लग गया तो भगवान् इनकी अन्तर्प्रकृति और स्वभाव को परिवर्तित कर देते हैं।

माहि पार्थ! व्यपाश्रित्ये येऽपिपाययोनयः।
स्त्रियो हि वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परागतिम्॥

(गीता, ६।३२)

वह साधु बन जाता है। स्मृति ने इसो परिवर्तन के माध्यम रूप में प्रायश्चित को लिया है। परन्तु प्रायश्चित मन से ग्लानि नहीं हटाता है। केवल सामाजिक स्थिति को सुधार देता है। शुद्ध ज्ञान के द्वारा पापी-तापी की भी मुक्ति हो जाती है। गीता ने इसे स्वीकार किया है परन्तु स्मृति शास्त्र इतना उदार नहीं है। महाभारत के शान्ति पर्व में जाति-विचार पर नूतन आलोक पात हुआ है। भगवान भृगु भरद्वाज जी से कहते हैं—एक ब्रह्म के द्वारा मनुष्य की सृष्टि हुई है। वह पहले ब्राह्मण ही था। उसी ब्राह्मण से सारा वर्ण विभाजन हुआ। मौलिक रूप से ब्राह्मण का प्रकाश हर वर्ण में प्रच्छन्न है।

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्राह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णता गतम्॥

(महाभारत, १८८।१०)

शान्ति पर्व में भगवान भीष्म देव ने कहा "वर्ण विचार का आदिम पुरुष ब्राह्मण है और सब जातियां ब्राह्मणों का विकार हैं।" अर्थात समाज संस्कार मूलक परिवृद्धि का प्रतीक है।

अथजन्न्हि शत्रवस्ते तैस्तैः कामैः समाहिता।
संसृष्टा ब्राह्मणवरैः त्रिषु वर्णेषु सृष्टयः॥ ५९।४४॥
तस्माद्वर्णा ऋजवोजातिवर्णा संसृज्यते तस्य विकार एव॥

वही विकार जनित सामाजिक संस्कार आध्यात्मिक नहीं है। भगवान के चरणारविन्द के पास उदारता ही श्रेष्ठ उपादान है। इसी विचारधारा से सामाजिक जीवन में स्मृति के प्रति व्यतिक्रम सम्मान हमेशा विद्यमान है। यही रक्षण शील नियम का उल्लंघन केवल सामाजिक स्तर में नहीं आध्यात्मिक स्तर में भी प्रकट हुआ है। भारत के मुख्य चारों धामों के भीतर कलियुग का श्रेष्ठ धाम पुरुषोत्तम क्षेत्र या जगन्नाथ धाम की सेवा पूजा में पूर्व शूरिगण इसी सामाजिक दृढ़ता को स्वीकार नहीं करते हैं। समन्वय भावधारा में धर्मशास्त्र जगन्नाथ धर्म में बहुत पीछे पड़ गया है। प्रत्येक जाति को सम्मान देना पुरुषोत्तमचेतना की मूल नोति है। घृणा असम्मान को यहां दुरूह अपराध माना गया है। सेवा पूजा में निर्दिष्ट उच्च वर्ग का अधिकार जगन्नाथ धाम में नहीं है। समन्वय का भाव हृदय में लेकर यह भाव उज्जीवित हुआ है। इसको ब्रात्य धारा का पवित्र मार्ग कहा जा सकता है। पुरुषोत्तम क्षेत्र में प्रत्येक जाति को स्वधर्म परिसर में पृथक् माना जाता है। परन्तु भगवान के

दरवार में हर एक की मर्यादा समान है। वैदिक ब्राह्मण, श्रेष्ठ अर्चक पूजा के समय वैश्य से जल लेता है। निकृष्ट ब्राह्मण पूजा द्रव्य पूजा में विनियोग कराता है। वैश्य चन्दन पीसकर भगवान के लिए प्रदान करता है। परीक्षा ब्राह्मण उत्सव काल में ब्राह्मण इतर के साथ समान सम्मान लेकर हाथ मिलाकर भगवान के आगे-आगे चलते हैं। यह एक समन्वय भाव का निदर्शन है, इसमें सन्देह नहीं। भीतर पूजा चलने के समय ब्राह्मण इतर व्यक्ति मन्दिर के ऊपर ध्वज समर्पण करता है। स्मृति इसका समर्थन नहीं करेगी। भगवान के शृंखल वस्त्र बारिक (नाई) खोलता है। और भगवान की शोभायात्रा में पूर्ण कुम्भ लेकर आगे-आगे चलता है। भगवान के पूजन के समय में इतर ब्राह्मण नहीं जा सकता है। परन्तु वहां तथाकथित देवदासी जाकर सेवा कर सकती है। भगवान के प्रसिद्ध पवित्र रथ निर्माण में स्वपच "भोई" का मुख्याधिकार है। गुप्त पूजा के आवरण निर्माण में डोम को सेवा का अधिकार प्राप्त हुआ है। स्वर्णकार के दरवाजे पर मन्दिर का छत्र उपस्थित होता है। सेवा की मर्यादा बढ़ाने के लिए गोपाल (अहीर) भगवान का अभिनन्दन बंदापना अपने हाथ से करता है। सफाई कार्य में खरका की सेवा हीन वर्ग की सेवा होते हुए भी इनको भी सम्मान दिया जाता है। भिल्ल शबर धर्मशास्त्र में निकृष्ट जाति है परन्तु जगन्नाथ मन्दिर में शबर जाति को इतना प्राधान्य मिला है जो कि उच्च वर्ग को नहीं मिला है। क्षत्रिय को मार्जनीय काम या झाड़ू हाथ में लेना निषेध है परन्तु जगन्नाथ मन्दिर के श्रेष्ठ सेवक गजपति महाराज और नेपाल के राजा सेवक रूप में शामिल हो गए हैं। महासामन्त गजपति राजा झाड़ू लेकर भगवान के सामने रथ और पथ को साफ करते हैं। यह कितनी ऊंची चिन्ता है कि सर्वश्रेष्ठ अधिकारी व्यक्ति भी सर्व निकृष्ट कार्य सेवा की दृष्टि से करता है। प्रभु जगन्नाथ जी का अपार मधुर नाम पतित पावन है। इसी नाम के पीछे दोनों का समुद्धरण भाव प्रच्छन्न है। इसी भाव के ऊपर उड़ीशा में प्रति शत दस नाम आते हैं। जिसमें ह्माड़ी-बन्धु, धोबी दीन बन्धु नाम सुविदित हैं। मूर्ति की दृष्टि से देखिए। स्मृतिकार कहता है "लग्नं भग्नं न पूजयेत' परन्तु पुरुषोत्तम क्षेत्र की सभी त्रिमूर्तियां इस दृष्टि से इस अपूर्णता के भीतर भी पूर्ण हैं। मन्दिर के चारों तरफ नग्न मूर्तियां हैं। क्या यह धर्मशास्त्र का उल्लंघन नहीं है। (स्थापत्य में नग्न मूर्ति का कारण किताब देखिए) सूर्य पराग चन्द्र ग्रहण लगने के

समय सारे भारत में देव सेवा बन्द रहती है परन्तु पुरुषोत्तम क्षेत्र में भगवान के नेत्रों को चन्द्र और सूर्य मानकर स्नान और नैवेद्य उस समय समर्पण होता है। क्या यह धर्मशास्त्र का निर्देशित मार्ग है? विशिष्टाद्वैतवादाचार्य श्री रामानुचार्य ने द्वादश शताब्दी में पुरुषोत्तम क्षेत्र के स्मृतिहीन आचरण को परिवर्तित करने के लिए बलिष्ठ प्रयत्न किये थे।" प्रपन्नामृत ग्रन्थ से प्रतीत होता है भगवान ने इसके संस्कार रूप को स्वीकार नहीं किया और गरुड़ के द्वारा इन्हें श्री कुर्म क्षेत्र भेज दिया। इससे स्पष्ट होता है कि इस धाम की पूजा सेवा समन्वय मूलक है, रक्षण शील मूलक नहीं है। भगवान के पास भेदाभेद का मूल्य नहीं है। गीता का वही धर्म पुरुषोत्तम क्षेत्र में प्रतिभात होता है। प्रत्येक उपजाति जगन्नाथ जी की सेवक है। ब्राह्मण इतर पदवी व्यक्ति भी उपवीत ग्रहण करता है। उपसंहार में भगवान के कैवल्य या महाप्रसाद को प्रणाम करके मैं व्यक्त करता हूं कि अन्न को धर्मशास्त्र शौचाशौच में मुख्य स्थान देने पर भी पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथ भोजन ने जातिविचार को सम्पूर्ण रूप में विलुप्त कर दिया है। **"जगन्नाथ के भात जगत पसारे हाथ"** पौराणिक साहित्य बार-बार हाथ उठाकर कहता है—जगन्नाथ जी के महा-प्रसाद में जाति विचार स्पर्श अस्पृश्य भाव नहीं है। प्राचीन काल में आर्य संस्कृति भारत वर्ष में प्रतिष्ठित थी। जो प्राचीन काल से आज तक नवीन संस्कारों को प्रोत्साहित करती है। सेवा पूजा की परम्परा में ये भाव स्पष्ट हैं। पुरुषोत्तम को भक्त और उपास्य भाव से समुन्नत मधुर प्रेमी प्रेमास्पदावस्था को ले जाने का कारण धर्मशास्त्राचार को मधुर विद्रूप किया गया है। उदाहरण में देखिए! विगतज्वर विभु जिनका नाम लेते ही तापत्रय अपसारित होता है उनको क्या कभी बुखार हो सकता है? परन्तु पुरुषोत्तम जगन्नाथ जी के ज्येष्ठ पूर्णिमा से आषाढ़ अमावस्या तक ज्वराक्रान्त के कारण दर्शन बन्द रखते हैं। उस समय शवर अर्चक गण मन्त्ररहित आदिम पूजा करते हैं। वनवासियों की प्रीति तथा आत्मीय भाव में उस उपास्य भाव का विलोप मनोभाव है। प्रति १२ से १८ साल के अन्तर में कलेवर समारोह में भगवान की गोलक गमन लीला को शवर बड़े आत्मीय भाव से करते है। जैसेकि साधारण मानव शरीर त्याग करता है और लोग शोकधारण करते हैं उसी प्रकार शवर सेवक वर्ग शोकधारण और अंत्येष्टि कृत्य करते हैं। जैसे कृष्ण के तिरोधान के बाद पांडवों ने श्राद्धादि किये थे। धर्मशास्त्रों से

ऐसा विचार सम्पूर्ण पृथक है। भाव के द्वारा शबर लोग सेवा के अवकाश के अवसर में सेवक वर्ग नमस्कार के स्थान में विग्रह को प्रगाढ़ आलिंगन करते हैं साधारण यात्री लोग भी आलिंगन कर लेते हैं। सेवा पूजा की परम्परा में ये भाव स्पष्ट हैं। ये स्थलाचार सम्पूर्णतया शास्त्र विशेषतः "स्कन्द पुराण के अनुसार होता है जिसमें संस्कार मनोभाव जाति वैषम्य भावना विशिष्टता के रूप में धर्मशास्त्र मर्यादा को लघु कर रहा है।

स्कन्दपुराणोक्त पुरुषोत्तम क्षेत्रमाहात्म्य, वामदेव संहिता, सुतसंहिता, कपिलसंहितादि आप्तग्रंथ समूहों में समस्वर में श्री-जगन्नाथान्न में जातिभेद को अस्वीकार किया है। सामान्य परिचय रूप में कुछ श्लोक निम्न में प्रदत्त हुआ। महाप्रसाद के बारे में स्कन्द पुराण का ३६ अध्याय

नैवेद्याशन माहात्म्य कथितं वो द्विजोत्तमाः।
श्रुत्वापि महतः पापान्मुच्येते पापकृतम॥१०१॥

सुतसंहिता का नीलादिमहोदय ग्रंथ का दशम् अध्याय में वर्णित हुआ है—पृष्ठ १०९।

जगन्नाथस्य वेनैद्यं महापातक नाशनम्।
भक्षणात् फलमाप्नोति कपिला कोटि दानतः॥
चण्डालादि जनस्पृष्ट तदन्नंच नृपोत्तम।
भोक्तव्यं सदृशा विप्रै पावनः सुरदुर्लभम्॥
बहुनात्र विमुक्तिेन नृपसत्तम सांप्रतः।
तदन्न स्पर्शता नूनं महापापैः प्रमुच्यते॥
कुक्कुरस्य मुखाद् भ्रष्टः तद्ग्राह्य देवरपि।
तस्मात्तदन्न सहसा प्राप्त मात्रेण भक्षणात्॥
जगन्नाथान्न मे तद्वै शुष्कं कृत्वा शुभेक्षितः।
देशान्तरे जनोयस्तु भक्षेत् प्रतिदिनं द्विजाः॥

समग्र पुराण साहित्यों में जगन्नाथ क्षेत्र का अन्न भोजन में जाति विचार को संपूर्ण अस्वीकार किया गया है। स्मृति शास्त्राचार का यह व्यतिक्रम, पुरुषोत्तम चेतना का एक महनीय संस्कार भाव का प्रतीक है।* इसमें सन्देह नहीं है। स्कन्दमहापुराण भी मुक्त कंठ में कच्चा भात छुताछूत से रहित बनाया है। ठोस प्रमाण देकर व्यासजी लिखे हैं यही उपवास का समादर नहीं है। धन्य आर्यों का संस्कृत विचार।

कुक्कुरस्य मुखाद भ्रष्टं तदन्न पतितोयदि
ब्राह्मणेनापि भोक्तव्यमितरेणा तु का कथा।

स्कान्द ३८/१७

जगन्नाथ क्षेत्र में एकादशी हरिवासरः भी स्वीकृत नहीं हुआ है।

उपोस्य निष्ठता वापि नोपवास च कुर्वता
सुशुनिवाप्य नाचारो मनसा पापमाचरन्
प्राप्त मात्रेण भोक्तव्य नात्र कार्या विचारणा

—३७-१८

इसलिए प्रचलित विधि के अनुसार—मूलमन्दिर का पश्चिम दिशा में एकादशी देवी आबद्ध रूप में पूजित होते हैं व समस्त प्रमाणों से प्रतीत होता है "जगन्नाथ संस्कृति में आचार प्राधान्य है; परन्तु हीन वर्गों को घृणा भाव में देखना अनुचित माना गया है।

पुरुषोत्तम क्षेत्र में एक बार एक कौआ भगवान नीलमाधव जगन्नाथ जी के दर्शन करके पक्षीजन्म से मुक्त हो गया था। आज रोहिणी कुण्ड में उसी काकस्नान जल को स्पर्श करके मनुष्य धन्य हो जाते हैं। इसलिए व्यासदेव जी लिखे हैं :

"वायसो माधव दृष्टातिर्यगदेहोदृप्यमुच्यते।"

—स्कन्द पुराण

इसीसे किसी को घृणाभाव से अनादर करना पुरुषोत्तम-चेतना में संपूर्ण निषेध माना गया है। चारण संस्था का यह विचार श्रेय है।

---

* हरित स्मृति, विष्णु स्मृति में "नीलादि पितृश्राद्ध" का प्रशस्ति उल्लेख है।

कामभाषा गरीयसी

प्रकृति पुरुषं चैव प्रविश्यात्मेच्छया हरिः।
प्रविश्य क्षोभयामास सर्ग काले व्ययाव्यो॥

वि० पु० १२-२९

अव्यय पुरुषोत्तम श्रीहरि ने सृष्टि के उन्मेषमय मुहूर्त में स्वइच्छा से विकारी प्रकृति और अविकारी पुरुष में प्रविष्ट होकर उन्हें कामग्रस्त किया था वहीं क्षोभ कहता है महान् गरीयसी भाषा।
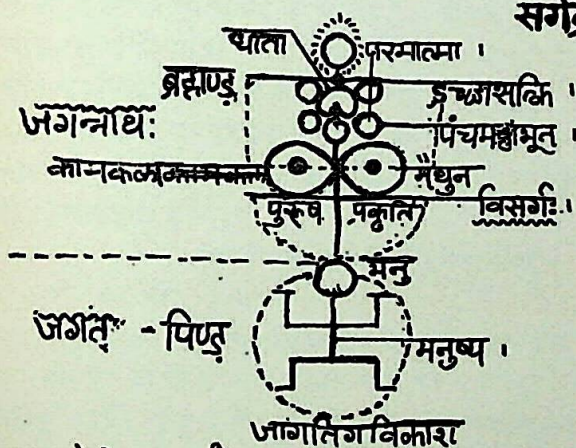
प्रवचन स्थान—चारणीय सत्संग, लापामा, यू० एस० ए०

तारीख—२७-२-८३

कामभाषा गरीयसी

स्त्री और पुरुष के सृजनात्मक मिलन को लोग मैथुन कहते हैं। परन्तु प्राक्काल में यह शब्द अत्यन्त पवित्र था। सृष्टि का बीज यही मैथुन या स्त्री पुरुष का मिलन। उसका यौन सम्बन्धी नाम काम क्रीड़ा। धार्मिक चिन्तन की दृष्टि से इसका नाम केलि। काम क्रीड़ा के चित्र मूर्ति की कल्पना से मनुष्य के मन में काम वासना जाग्रत होती है। आध्यात्मिक दृष्टि से इसे निंदित कर्म कहते हैं। यदि यह सत्य है तो कलियुग का धाम श्री जगन्नाथजी के मन्दिर में मुखशाला के बाहिर्देश में यह मैथुन विग्रह किसलिए रखा गया है? प्रत्येक यात्री व दर्शक के मन में यह प्रश्न उठता है और अबोध्य भी रह जाता है। लेकिन थोड़ा ध्यान देकर आप यदि प्रस्तर की भाषा श्रवण करेंगे तो यह स्पष्ट हो जाएगा। प्रस्तर की मूर्ति जवाब देती है तुमने क्या काम को जीत लिया है? काम को छोड़-कर क्या जीव मात्र रह सकते हैं? जब यह महासत्य है तो छिपाने की बात क्यों सोचते हो? सत्य का अप्रलाप क्यों करते हो? क्या भूल गए हो। वेद कहता है—

कामो जज्ञे प्रथमो नैन देवा आपुः।

क्या यह भी भूल गए—

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत प्रथमं यदासीत् 'नासदीये'

इस वेद वाणी को भूल जाना जीव का धर्म नहीं है। पहले नेत्रों को संयत करो। तुम्हारे नेत्र दूषित हो गए हैं। क्या तुमने शिव मन्दिर में उपासना नहीं की है? तुम जिस लिंग शक्ति की उपासना करते हो उस प्रत्यक्ष मिथुनात्मक विग्रह को देखकर कभी कामोद्रेक हुआ है? फिर इस काम चित्र को देखकर क्यों डर जाते हो! मां आद्याशक्ति महाकाली की योनि देश में लिंग समावेश देखकर कोई दुनिया में काम चिन्ता कर सकता है? अधिकन्तु दैवी भाव में मन डूब जाता है। फिर मूर्ति कहती है विषयानुचिन्ता को त्याग करके मन्दिर के भीतर जाओ और भीतर देखोगे "सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान पुरुषोत्तम ने स्वयं अपने इन्द्रिय विकास को त्याग दिया है। हाथ है, अंगुलि रहित, अर्थ हुआ क्रियात्मक अनुभव को त्यागना। यदि नहीं समझते हो तो आदि शंकराचार्यजी की

भाषा सुनो !

देहात्मना संस्थित एव कामी
विलक्षणः कामयित्वा कथं स्यात् ।
अतोर्ध्व संधान परत्वमेव
भेदः प्रसक्ता भववंध हेतुः ।।
('विवेक चूड़ामणि')

अर्थ हुआ देहात्म बुद्धि में काम वासना निश्चित रूप में है। भगवान जगन्नाथ जी कहते हैं "हमने वासना रूपी अंगुलि को त्याग दिया है। मैं विलक्षण परमात्मा हूं। हमारे शरीर में प्रपंचरूपी पंचागुलि कैसे रहेगी। तो तुम भी विषय भेद शक्ति के कारण काम वासना में लिप्त मत हो। शरीर का भवबंध त्याग करके मुझे भजन करो। अनायास में प्राप्ति होगी। वासना बुद्धि से कर्म जंजाल की सृष्टि होती है। अतः वासना, कामना और क्रिया इन तीनों को संयत करो। सोच लो मन में सन्तोष करो। यह संसार के कामबंध में काफी सुख अनुभव कर चुके हो। और बोलो—"हे कामना स्वरूपी सुख ! तुम लोग बाहर रहो मैं तुमको प्रणाम करता हूं। मैं अभी दर्शन के लिए जाता हूं मुझे त्याग करो।

क्रिया नाशे भवेत् चिन्ता नाशोतस्माद्वासना
क्षयः। वासना प्रक्षपे मोक्षः ।।

सोच लो अब मेरी मोक्ष वासना जाग्रत हो गई है। अभिनव सूर्य की किरण से रात्रि रूपक कामना, अहंकार रूपी निद्रा मेरी नाश हो गई है। वही ब्रह्म वासना जीवन का श्रेय है। और श्रेय को आश्रय करके हे प्रस्तर मूर्ति मैं तुम्हारे आकर्षण से आज मुक्त होना चाहता हूं। मुझे अब और मत खींचो। यही भाव उपस्थित होने से जीव ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। जीव के मन में यह प्रश्न होता है कि यदि यह नग्न काम मूर्ति मन्दिर में न होती तो क्या यही भाव नहीं हो सकता है ? तो फिर मूर्ति खोदने का क्या कारण है ? आत्मा उत्तर देती है वस्तु नहीं तो विक्रिया कहां ? सामने वस्तु को रखकर जो व्यक्ति विवेक-ताड़ना से कामान्धता का सामना करके छोड़ता है वही त्यागी है। वस्तु नहीं है तो त्याग भी कैसे हो सकता है। तुम यदि वास्तव में आनन्द के लिए भगवान पुरुषोत्तम के चरणारविंद में जाना चाहते हो तो भवबन्ध के सामने होकर भद्र रूप से उनको त्याग कर जाओ। अपने भीतर में छिपाकर वासना को मत रक्खो। बाहर निकाल दो तब बेड़ा पार हो सकता है। कारण सारा

'ब्रह्मांड' काम लीला है। आदि पुरुष, प्रथम जल को रचकर उसमें वीर्य त्याग किया था। वह धाता सृजन प्रक्रिया का प्रथम सृष्ट पदार्थ "ब्रह्मांड" व सुवर्णमय अंड हो गया।

देवः पूर्वमपः सृष्टा तासुवीर्यमपासृजत्।
तदण्डप्रभवद्भैम ब्रह्मांड कारणं परम्॥ —व्यासवचन

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत प्रथम यदासीत भाव में तुम क़ाम को शत्रु न मानकर दैवीगुण का प्रतीक मानो। विषय में आसक्त होकर तमगुण को चित्त में आश्रय देकर तुम काम वासना को नहीं छोड़ सकते हो। ईश्वर कहते हैं हमें कैसे पाओगे? काम चोर है। चोर से छिप-छिपकर रहना संभव नहीं, समुचित भी नहीं। यदि सत्य शिव सुन्दर त्रिमूर्ति के दर्शन करने के लिए श्रद्धालु हो तो भव जंजाल से मुक्त होने के लिए आत्म-सुख के सामने असत् को पकड़-कर बलि दो। क्या तुमने छान्दोग्योपनिषद् नहीं पढ़ा है? राजपुरुष ने किसी व्यक्ति को चोरी के अपराध में पकड़ लिया। दण्ड देने को उद्यत हुए तब चोर ने कहा, उसने चोरी नहीं की। क्या यह कहने से उसे राज-दंड से छूट मिलेगी? जीव ने चोरी को छिपाने को मिथ्या का आश्रय लिया। क्या मिथ्या से किसी की रक्षा हुई है। इसीलिए प्रस्तर मूर्ति कहती है हमें देखो, तुम्हारे साथ मेरा पुराना परिचय है। राजी-खुशी से हमसे विदा लो तो हमारा डर नहीं रहेगा। प्रस्तर मूर्तियां हंसकर कहती हैं, "ओ भोले दर्शक! क्या यह नहीं जानते हो कि इस मन्दिर के भीतर जो विग्रह है वह कामादिरहित है। दूसरे देवताओं की तरह इनके पास कोई लौकिक क्रिया नहीं है। यहां शक्ति अव्यक्त माया के रूप में विराजित है। जगत् सृष्टि कारणी "विष्णु माया सनातिनी" को जीतना बड़ा कठिन है। कारण माया के रूप में वह ब्रह्म के साथ रमण कर रहा है। तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रद पिता। १४-६। —गीता
तुम सांसारिक माया का त्याग नहीं कर सकते हो, तो वे तुमको ग्रहण करेंगे कैसे?

वह सद् से पृथक् असद् से पृथक् और सद् असद् से भी पृथक्। इस-लिए इनके हाथ-पैर नहीं है परन्तु अंग है। हम सब इनकी सहचरी, अनंग मदनातुरा, अनंग मेखला, अनंग वेदना ऐसे ही हम लोगों के नाम हैं। हम लोगों का दर्शन किए बिना भीतर जाओगे तो उभयात्मिका पुरुषोत्तम चेतना की शक्ति जो ब्रह्म की सहजाता भगिनी है वह तुमको

अपना कर लेगी। इसीलिए कह रहा हूं खुशी मन से अन्दर जाओ। यदि सोचते हो कि भीतर ब्रह्म नहीं है तो यह तुम्हारी "अभावना" है। जब चिन्ता करते हो देह का सुख मूल है तो वह "विपरीत भावना" है। तब यदि किसी विषय में स्पष्ट धारणा नहीं है तो इस शंकितावस्था का नाम "असंम्भावना"। जब, है या नहीं, ऐसे द्वन्द्व में पड़ गए हो तब यह "विप्रतिपत्ति" अवस्था है। छोड़ो संशय को। कामादि भावना से मुक्त होकर अन्दर जाओ, दर्शन करो विक्षेप शक्ति का। अभी क्या तुम समझ गए हो क्यों काम की प्राचीर है? यह तुम्हारे मन की परीक्षा के लिए ही है। अभी तुम नहीं देख सकते हो शायद तुम्हारी कामना चिन्ता चली गई है। सतर्क कर दो इस चोर को। क्रोध, मोह, मद, मात्सर्य हर एक का इस शरीर पर जब प्रभाव आता है तब लक्षण से मालूम पड़ जाता है। परन्तु काम कभी मालूम नहीं होता है। ऊपर से साधु बन कर भी भीतर काम की कल्पना में डूबे रहना असम्भव नहीं है। स्थापत्य को देखो, ठीक यही मूर्ति खोदित है। हाथ में दंड-कमण्डल और अधर में कामासक्ता महिला की स्पर्श! अतएव स्थपति लोगों ने उत्तम रूप से तत्त्व को जानकर कामपाश को फैलाया। "कामो मे जुहोमि" कहकर निर्द्वन्द्व होकर अन्दर जाओ। काम ने जगत में किसी को छोड़ा नहीं। काम प्रवृत्ति को उपभोग करने के बाद तुम छोड़ सकते हो। उपभोग नहीं करेंगे और छोड़ेंगे, ऐसा नहीं हो सकता। तब काम अपने पाश में तुम्हें रखेगा। इसीलिए प्राच्यो संस्कृति का महर्षि वात्स्यायन पाश्चात्य संस्कृति के दार्शनिक फ्रायड का काम दर्शन कहता है, "काम-भोग एक महान् सत्य है। जो अनुभव करता है वही छोड़ सकता है। फ्रायड (Freud) ने तो माता-पिता के पवित्र प्रेम को, सन्तान के लिए भी काम की दृष्टि से समझाने की चेष्टा की है जो भारतीय आर्य संस्कृति में मान्य नहीं है। वात्सल्य और शृंगार बराबर नहीं हो सकता। कभी दिगम्बर शंकर भगवान के दर्शन करके किसी को काम-वासना का उद्वेग नहीं हो सकता है। लुप्त काम-वासना को समझाने के लिए फ्रायड ने Odipus और Electra Complex नामक सिद्धांत को प्रतिपादित किया है। यह सिद्धान्त पिता के नैसर्गिक स्नेह पुत्री के प्रति, और मां का अधिक नैसर्गिक स्नेह पुत्र के प्रति को, लुप्त काम-वासना का परिणाम बताता है। पर यह सिद्धांत हमारी प्राच्य संस्कृति में मान्य नहीं है। हमारी

प्राचीन संस्कृति प्रेम को अप्राकृत वस्तु माना है। अभी शायद तुम समझ गए होंगे यह मूर्ति क्यों है? एक और बात सुनो और तुलना करके देखो! तुलना करने से मालूम होगा। "शुकदेव, जयदेव प्रभृति शृंगार रस को कैसे लेते थे और कैसे शृंगार रस के माध्यम से भगवत प्राप्ति लाभ करते थे।

इह रसभणने कृतहरिगुणने मधुरिपुपदसेवके।
कलियुग चरितं, न वसतुदुरितं कविना जयदेवके।।७।८।।

काम हम लोगों को खींचकर प्रेममय भगवान की ओर ले जाता है इसलिए जयदेव जी ने कहा है "हरिमेक रसम् चिरमपि विहितं विलासम्।" तब अनायास में तुम हम लोगों को जीत सकते हो ऐसा ये प्रस्तर मूर्तियां कहती हैं। ऋष्य शृंग, विश्वामित्र, तपस्वी नहुषादि तपश्चरण के भीतर हम लोगों का विरोध करके भी हमारे काम चक्र में पड़ गए और रसिक कवि समाधिभाषा के प्रवर्तक शुकदेव गोस्वामी-पाद हम लोगों के साथ मिलकर काम को पूर्ण रूप से पराजित कर सके। इसीलिए अड़ो मत। आदि शंकराचार्य जी पहले अड़े थे, कट्टर थे किंतु जब उभय भारती के साथ शास्त्रार्थ हुआ तब कामशास्त्र में अनभिज्ञ रहने के कारण अमरुक राजा के शरीर में काया प्रवेश के द्वारा काम रसास्वादन किया। "अमरुक शतक" में लिखा है तब शंकराचार्य जी को विजय प्राप्त हुई। इसलिए नग्न प्रस्तर मूर्तियां कहती हैं काम चिर शाश्वत है तुम अपनी संयम शक्ति के द्वारा इन्हें भगवतोन्मुखी करा लो तब जीत हो जाएगी। घृणा करने से काम चक्र में पड़कर तड़पते रहोगे। इसी आध्यात्मिक कारण से सामाजिक, ऐतिहासिक और तांत्रिक की चिन्ताधारा पृथक् है। दर्शन को आए हो तो धर्म की दृष्टि से सोचो!

पुरुषोत्तम चेतना

सर्वं रहस्यं पुरुषोत्तमस्य देवे न जानाति कुतः मनुष्याः ।
(कपिलवाक्यम्)

भगवान् पुरुषोत्तम के संपूर्ण रहस्य देवताओं को भी अज्ञात हैं, साधारण मनुष्य उसको कैसे व्यक्त कर सकता है ?

स्थान—5882 IRIS Cir,
Lapalma California, USA 90623
तारीख—२८-३-८३

पुरुषोत्तम चेतना

वास्तव में अद्भुत ब्रह्म जिज्ञासा और अद्भुत प्रत्यक्ष ब्रह्म जिसका कोई आदि नहीं है न अन्त। जो अनन्त है। चलो अभी इस दुर्गम बात को नहीं सोचेंगे तो भी साधक पूछता है निर्गुण साधना कैसे सगुण हुई और सर्व प्रथम सगुण ब्रह्म कौन है ? राम, कृष्ण तथा और अवतार तो लीला के लिए आविर्भूत हुए थे। इन अवतारों ने अवतारी परब्रह्म से कला लाभ की थी। अवतारी और निर्गुण ब्रह्म के भीतर साधक के मानस-पटल पर पहले कौन आया ? इस प्रश्न के उत्तर में शास्त्रों और ऋषियों ने कहा है **"नाम वाचक अवतार और गुणवाचक स्वरूप"** के बीच में ऐसी स्थिति है जिसे **तत्त्वावतार** कहते हैं। तत्त्वावतार का प्रतीक पुरुषोत्तम है। पुरुषोत्तम निर्गुण चिन्तन और सगुण कल्पना का प्रथम विकल्प है। इसीलिए इन्हें रूप-अरूप न कहकर मध्यवर्ती तत्त्व प्रतीक कहा जा सकता हैं। हर एक वस्तु की यही तीन स्थितियां नित्य हैं। जब कोई वस्तु मानस-पट्ट में अनुभव होती है वह अभिव्यक्ति बनाने का उपाय प्रतीक और जव रूप के आधार पर बताई जाती है तो वह प्रतिमा है। महर्षि पिप्पलादि इस धारात्रयी को स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से वेद में "पुरुष" शब्द निर्गुणात्मक तथा परवर्ती स्थिति में तत्त्व पुरुषोत्तम नाम से विदित हुआ।

परस्य ब्रह्मणेरूपं पुरुषः प्रथम द्विजः।
व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपेकाल तथा परम् ।।

(विष्णु पुराण १-२-१५)

और वाद में शिव, रुद्र, विष्णु इत्यादि नाम से रूप भाव को लिया है। इसीलिए पुरुषोत्तम नाम सम्पूर्ण तत्त्व-मूलक और भगवान के बहु नामों के भीतर श्रेष्ठ माना गया।

ऋग्वेद का **"सहस्र शीर्षा पुरुषः"** विराट रूप का प्रथम विकल्प तत्त्व जिसमें अंगवर्णना है लेकिन प्रतीक रूप में। यथा मुख से ब्राह्मण अर्थात् मुख से ब्रह्म तत्त्व व्यक्त किया जा सकता है। बाहु से क्षत्रिय—बाहुबल ही शारीरिक बल का प्रतीक है, इत्यादि। चन्द्रमा की तरह मन शीतल सूर्य की तरह द्योतक इत्यादि यही पुरुष शब्द जब निर्धारित

प्रतीक हुआ। तब इसे पुरुषोत्तम कहा गया।

प्रतीक शब्द का अर्थ है कोई एक चित्र या जिसका निर्धारित रूप नहीं है, अपिच रूप की भावना देता है। यही प्रतीक है। जैसे एक 卐 स्वास्तिक जीव और परम की योग रेखा में जगत-भ्राम्यमाण सूचक है। स्वास्तिक से यही भाव होता है। इसी को संसार-चक्र का स्वरूप कहा जाता है। उपनिषद् काल का यही विचार सोचने के पहले गंभीर पुरुषोत्तम तत्त्व ही प्रतीक के रूप में आता है। एक ब्रह्म एक से अधिक हुआ। "तैत्तरीय उपनिषद" कहता है—(३।१६०) एक सन् बहुधा विचारः। "गीतोपनिषद्" कहता है तत्त्व मूर्ति पुरुषोत्तम देवताओं के भीतर आश्चर्यजनक या अद्भुत पूर्व रहस्य तथा सर्व देवमय समन्वय तथ्य है।

"आश्चर्यं खलु देवानामेकत्व पुरुषोत्तम।"

तैत्तरीय उपनिषद् (२८।१२) सूत्र में कहा है कि ब्रह्म की प्रथम संकल्प भावना पुरुषोत्तम है। पुरुषोत्तम तत्त्व ऊपर से एक शब्द मालूम होता है। परन्तु इसमें त्रितत्त्व प्रच्छन्न है। जैसे सूर्य एक है लेकिन उदय सूर्य, मध्याह्न सूर्य या सायं सूर्य किरण भेद में सृष्टि, संहार, पालन के क्रम में तीन माने जाते हैं। जैसे केशव एक शब्द है, लेकिन पाणिनि इनके सूत्र में (७-२-१०९) कहते हैं क—ब्रह्मा, अ—विष्णु, ईश—महादेव, ये त्रिवेद तत्त्व एक शब्द में है जो केशव पुरुषोत्तम है।

ध्यायते कृते यजन यज्ञे स्त्रेतायां द्वापरेऽर्चन।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौसंकीर्त्य केशवः॥

त्रितत्त्व प्रतिपादित पुरुषोत्तम नाम का प्रथम प्रतिपादन कारी "मुंडक उपनिषद्" में कहा है क्षर, अक्षर और उत्तम यही तीन तत्त्व पुरुषोत्तम नाम में पर्यवस्थित है।

दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः अक्षरात् परं क्षरात् परः।
स्तं देवदेवानां ब्रह्मादीनांदेवम् पुरुषोत्तम क्षराक्षराभ्यां॥

(शंकर भाष्ये)

जिसको जानने से हृदय का संदेह मिट जाता है। जन्म-जन्मातर के कर्म क्षय हो जाते हैं। "श्वेताश्वतर उपनिषद्" के मंत्रद्रष्टा पुरुषोत्तम चेतना के सम्बन्ध में कहते हैं—पुरुषोत्तम न स्त्री, न पुरुष, न कुमार, न कुमारी। अजीर्ण शरीर में जीर्ण या विकल्प शरीर में दण्ड स्वरूप हस्त धारण करके समस्त अपवर्ग को अपरोधित करता है। वह संसार में

बहुतत्त्व रूप में आविर्भूत हुआ है।

त्वं स्त्रीं स्त्वं पुमानसि त्वं कुमार रत वा कुमारी।
त्वं जीर्णा दण्ड वचेसि त्वं जात भवति विश्वतोमुखः ।।

(तैत्तरीय आरण्यकेउक्तं)

न माता जनकः जन्मं न रूपावयवस्तथा।
सर्वतत्त्वमयं साक्षात् ब्रह्मण्यं पुरुषोत्तम ।।

(नीलमणिपुराणे)

आर्य संस्कृति का प्राज्ञपुरुष भीष्मदेव बुद्धावतार जगन्नाथ जी को शून्यात्मक भाव में ग्रहण किए है। सर्वरूप सभास्थाप्य सर्वरूप पारायणे, मोहयन् सर्व भूतानि तस्मैवुद्धात्मने नमः (भीष्मस्वराजे वें, सं०) पुरुषोत्तम साकार रूप का प्रथम उन्मेष, जो कि सर्वप्रथम, द्विपाद मनुष्य के हृदय में परमहंस रूपी पक्षी भावना में समावेश हुआ था। मनुष्य जीव हुआ और पक्षी प्राण—यही प्राण तत्त्व परमहंस विद्या के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परमहंस विद्या का तात्पर्य हुआ मनुष्य चिन्तन के द्वारा अपने प्राण-पखेरू को उपलब्ध करे। यही भावना उपनिषद् में प्रतीक रूप में प्रकट हुई। प्रणवविद्या का मुख्य प्रवर्तक 'हंस उपनिषद्' में परमहंसावस्था को बहुत उच्चस्तरीय चिन्तन, उपलब्धि रूप में व्यक्त
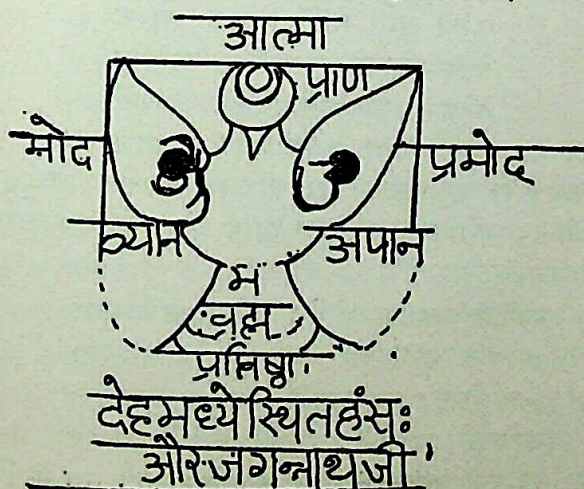
किया गया है, जो अत्यन्त मर्मपूर्ण रहस्य है। एक हंस को प्रतीक रूप में लेकर कहा गया है "हंस का प्राण हुआ (नादबिन्दुमय), सिर दक्षिण पक्ष व्यान वायु; अपान उत्तर पक्ष; ऊर्ध्वस्थित शीर्षबिन्दु आत्मज्ञान का प्रतीक है। वही "कठ उपनिषद्" में हंस शुपिषत् ३२।२ वाक्य भी कथित है—

तस्य प्राणः एवशिरः व्याने दक्षिण पक्ष अपानो उत्तर पक्षो आकाश आत्मा।"

श्वास प्रश्वास रूपक हंसतत्त्व को "ब्रह्मविद्योपनिषद्' में प्राणियों के श्वास रूपक हंस को शरीर तत्त्व में उपलब्धि करके कहा है—

प्राणिनादेह मध्ये तु स्थितोहंस सदाच्युत।
हंस एव परं सत्यं हंस एवं तु शाक्तिकम्॥५०॥

वस्तुतः शरीर तत्त्व में श्वासद्वार (Nasal Septum) से लेकर Trachea नालदेकर खाद्याधार (Stomach) तक की आकृति को उपलब्ध करके उभय पार्श्वस्थ हृदय मण्डल Lungs सहित एक हंस रूप को प्रतीक रूप में व्यक्त किया है। हंस विचारधारा को संकेत रूप में लेकर पुरुषोत्तमाकृति विग्रह के स्वरूप को देखने से उभय में कितना साम्य है, व स्पष्ट होता है। हंसविद्या चित्र द्रष्टव्य।

"कठोपनिषद्' का अभिमत है पुरुष के शरीर में चन्द्र सूर्य की (वर्तुलाकृति)किरणों और नक्षत्र-मण्डल की देदीप्यमान लक्षण विद्यमान हैं। परन्तु उन सबकी स्वतंत्र तैजस सत्ता नहीं है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रः तारकं
नेमा विद्यतो भान्ति कुतोग्नि
तमेव भान्तमनुभान्तीति सर्वं
तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति २।१५

तात्पर्य है कि वह समस्त ब्रह्मपुरुष का तैजस सत्ता ही है। "ब्रह्म-पुराण" ने सर्व ज्योतिर्मय तत्त्वमय पदार्थ को भगवान परमात्मा के नेत्र रूप में ग्रहण किया है।

एको हि चन्द्रः द्वौ व्योम्नि तिमिराहत चाक्षुषः
आभाति परमात्मा च सर्वोपाधि संस्थितः
नित्योदित स्वयज्योतिः सर्वग पुरुषपरः
अहंकार विवेकेन कर्ता हिमिति मन्येते

इस विचार में **"एवमेवाय पुरुषः प्राज्ञेनात्मना"** सूत्र में त्रिविक्रम

रूप में ज्ञात हुआ है।

"बृहत् उपनिषद् २" उनको तददेवो ज्योतिषा पतिः ४।४।१६ कहता है। सर्वोपरि पंचम वेद महाभारत में कहा है—जो सम्पूर्ण पूर्णता का प्रतीक है और पूर्ण रूप में आश्रितों को भर देता है वो पुरुषोत्तम है।

पूर्णाद्वा सद्नाद्वा पुरुष पूर्णात्सदनाच्चैव ततो हंस पुरुषोत्तमः

(महाभारत उद्योग पर्व, ७०।११)

भगवान ज० शंकराचार्य अपने मठाम्नाय में पुरुषोत्तम जगन्नाथ की निर्गुण, सगुण का संधिस्थानीय रूप में ग्रहण किए हैं।

आदिदेव जगन्नाथस्तत सेवनविधौ भवान
निर्गुणोऽपिच साक्षी स चेतना केवलमात्मनाः

(५४ पृ० ७१)

त्रिगुण रहस्य पर विष्णु भगवान के त्रिपाद विभूति तत्त्व पर विराट पुरुषत्व प्रकट हुआ है।

वही पुरुष रूपक ब्रह्म ही "त्रीणिपदा विचक्रमे इति श्रुते त्रय लोका क्रान्तमिति भावः" जिनके विक्रम शक्ति तीनों तैजस लोक में व्याप्त है। हरिवंश में उल्लेख है—

त्रिरित्येव त्रयो लोकाः कीर्तिता मुनिसत्तमः।
क्रमते तांस्त्रिधा सर्वा स्त्रिविक्रम इति श्रुते॥

यही त्रितत्त्व (Trinity) सगुणवाद के भीतर निर्गुण तत्त्व को प्रकट करता है। पुरुषोत्तम नाम में "विष्णु पुराण" से भी यही प्रमाण परिपुष्ट होता है।

हिरण्यरेतसं दीप्तं पुराणं पुरुषोत्तम।
सकलं निष्कलं शुद्धं निर्गुणं गुणसाश्वतम्॥

साधन की अवस्थात्रयी के आधार पर ब्रह्म चिन्ता जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति मार्ग में ही प्रतीत होती है। जो जाग्रतावस्था सदा उन्मीलित और शुभ्र वर्ण की प्रतीक है इसको आत्मिक विकास कहा जाता है। स्वप्नावस्था में कभी अंधकार कभी आलोक प्रतीत होता है। इस क्षण-क्षण परिवर्तित अवस्था को माया माना गया है। इसको विद्युत वर्ण कहा गया है। सुषुप्ति अवस्था घने अंधकार का प्रतीक। बाह्य ज्ञानातीत सुषुप्ति अवस्था का वर्ण कृष्ण। इस अनुभव के विचार से पुरुषोत्तम तत्व शुभ्र, लोहित और कृष्ण वर्ण का प्रतीक है। एक जीव = जाग्रत, स्वप्न=माया, सुषुप्ति=ब्रह्म या परमात्मा।

जाग्रतस्वप्नतीषु स्फोटतमरं यसौ समुज्वंभते अन्तर्यमयंस्त्वं भूतान्यखिलानि—

"भूयः कथियोऽसि श्रुत्या परमात्मा" वाक्य में परमात्मा व्यक्त हुए हैं (शि० उ० ४७) अवधूत पटल कहा है—

जीवात्मा जाग्रतश्चैवः स्वप्नः कल्पित मायिकः
सुषुप्ति ब्रह्मनिर्वाणं परमात्मा उदाहृतम्

साधक की चित्तवृत्ति जिसके द्वारा ब्रह्म उपलब्ध होता है। इसमें भी तीन वस्तु मुख्य है। देह, बुद्धि और चिदाभास। देह क्षर, बुद्धि अक्षर और चिदाभास ब्रह्म का प्रतीक है। एक देह व आत्माधार द्वितीय देह की शक्तिमयी विक्रिया तृतीय चिदाभास ब्रह्म की उपलब्धि है। यह अवस्थात्रयी भी पुरुषोत्तम में प्रकटित हुई है। आत्मा शुभ्र, बुद्धि अरुण, ब्रह्म अनन्त व कृष्ण। इसी का प्रमाण वेद वाक्य ही है।

सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म

महावाक्य के भीतर सत्य चिन्मय और स्वच्छ। ज्ञान परिवर्तित कल्पित भाव, जिसका वर्ण अरुण या विद्युतवर्ण, अनन्त सर्व काल में कृष्ण—यही त्रिवर्ण त्रितत्त्व का सूचक है। प्रणव रहस्य में यही तत्त्व अकार, उकार, मकार अक्षर त्रय का समावेश। "मुण्डक उपनिषद्" कहता है परमात्मा पुरुषोत्तम एक मात्र लक्ष्य। अप्रमत्त भाव में उनको उपलब्ध
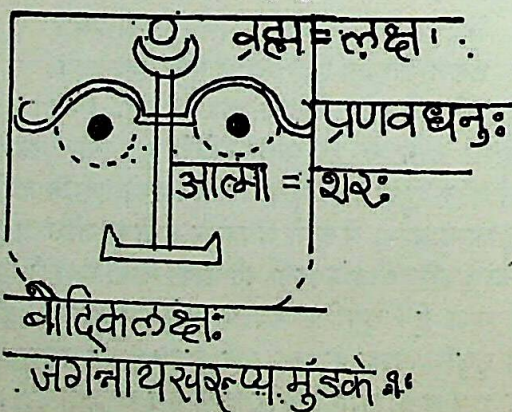
करो। ब्रह्म जिज्ञासा रूपी धनुष-बाण की सहायता लेकर अपने को इसी में लीन करो। यह वाक्य भी प्रतीक रूप से बताया गया है। कहा गया है "साधक ! तुम अनाहत चक्रस्थित शर को लेकर, आज्ञाचक्र को धनुष में, शर-संधान करके सहस्रार-चक्र स्थित "ब्रह्मोपलब्धि" रूपक लक्ष साधन करो।

प्रणव धनुः शर आत्मा ब्रह्मतदलक्षमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यः शरवत् तन्मयो भवेत्॥

इस प्रतीक को देखने से यह भी एक अप्राकृत मूर्ति का परिचय देता है। पृ० ६८ पर चित्र द्रष्टव्य। नारद "परिव्राजक उपनिषद्" कहते हैं—पुरुषोत्तम सबसे उत्तम है। इस दिव्य रूप में सर्व देवता का तत्त्व निहित है। शिव अच्युत, ब्रह्म रूप में यह त्रयी है।

वह वस्तुतः पुरुषोत्तम भावना में सर्वधर्म समन्वय की भूमिका है।

कवि पुराणं पुरुषोत्तमोत्तम।
सर्वेश्वर सर्व दिवै रूपास्यम॥
अनादि मध्यान्तमनन्तमव्ययम्।
शिवाच्युतांभोरुह गर्भ भूधरम्॥

योग "चूडामणि उपनिषद्" ने इसी त्रितत्त्व को स्थूल, सूक्ष्म, और परम भाव में लिया है। स्थूल क्षर पुरुष, सूक्ष्म अक्षर पुरुष, और परम उत्तम पुरुष में प्रकट हुआ है। उनका यही त्रितत्त्व फिर प्रतीकवाद की ओर जा रहा है। उपनिषद् ने स्वयं इसे वपु कहा है।

स्थूल सूक्ष्म परं चेति ब्रह्मण त्रिविध वपुः।

महर्षि पिप्पलादि ने अपने "पुरुष तापनी उपनिषद्" में कहा है एक ब्रह्म तत्त्व, तीन हुए हैं। जो कि अपने अनुभव से उपलब्ध होता है और यो वेद का निर्यास है। स त्रीणि एको भवति बुद्धिगुहायां विवर्तनेन स एको (त्रिधा) तिस्र भवति स एवं पुरुषः वेदान्त वेद्यम् यं एवं वेद

"स्कन्द महापुराण" वही त्रितत्त्व को मायिक विकास की दृष्टि से पुरुषोत्तम विग्रह को ग्रहण किया है।

एक ब्रह्म त्रिधारुद्धं माययानुगत स्वया ३१-७९।

प्रणव तत्त्व का यही त्रितत्त्व कुमार विद्या का प्रतीक है। पिप्पलाद महर्षि का "शिशुवेदोपनिषद्" कहता है यह प्रणव ही जीव का आदि स्वरूप जरायु के भीतर शिशुरूप में प्रकट होता ह। जैसा प्रणव वै शिशुः

गर्भोपनिषद् का अभिमत है कि "मातृगर्भस्थ जरायु में सप्तम मास में 'जीवब्रह्म' प्रवेश करता है। अष्टम मास में परिपूर्णावस्था प्राप्त होती है।" महर्षि आथर्वण पिप्पलादि श्वकृत "शिशुवेदोपनिषद" में गर्भ रहस्य को प्राञ्जल रूप में प्रकट किये हैं। प्राण का संचार तथा निष्कृति (यातायात:) उभय कठोर स्पंदनशील होता है। अर्थात् जीव जीवत्व प्राप्तावस्था समय और त्याग के समय सहसा प्रकम्पित होता है। वह उभय कम्पन ही 'देवयान' पितृयान् मार्ग का सूचक है। जीवन का प्रारंभ कम्पन से देवत्व का संधान मार्ग या देवयान मार्ग, और जीवन का अन्तिम कम्पन से परलोक तत्त्व का प्रवेशमार्ग या पितृयान मार्ग कहलाता है। गर्भावास काल में जब जीवन रूपक आत्मा प्रवेश करता है, तब सप्तम मास में समस्त नाड़ीमण्डल सहसा प्रकंपित होता है, मातृ-तन्तु घुर जाता है। भ्रूण प्रणवा कृति भवति, ऊँकार रूप को धारण करता है। तब जीव शिवत्व प्राप्तं होता है। ये रहस्य वैदिक कुमार विद्या कहलाता है। उस दैव कंपन से हस्त, पाद, कपाल में रेखा प्रकट हो जाती है, जिसके आधार में 'सामुद्रिक विद्या' सृष्ट हुआ है।

वही शिव तथा जीव की लीला के परम व्यक्त रूप 'प्रणव' है। अंक भ्रूण का आकार में, अपर प्रयाण काले मनसाचल में ही प्रकट होता है। आर्य पिप्पलादि का वचन सुनिये।

सप्तमे मासे योग संप्राप्ते सर्वनाड्य: स्पंदन्ति, मातृनाल महातन्तुं घूर्णति तद् कंपनात् भ्रूण क्षारसमुद्रे प्रणवाकृति भवति स वै गर्भकुमार प्रणवात्मरूपम् वदन्तिमृषिणा, तद् कम्पनात् करे पदे कपाले रेखाणि संभवति सा रेखा: जीवस्य शांकुन भवतीति।

आथर्वण शिशु वेदोपनिषदे प्रथम प्रपाठके, १०म वाक्ये उक्तं गोपालतीर्थ MSS पृष्ठ ८ म"
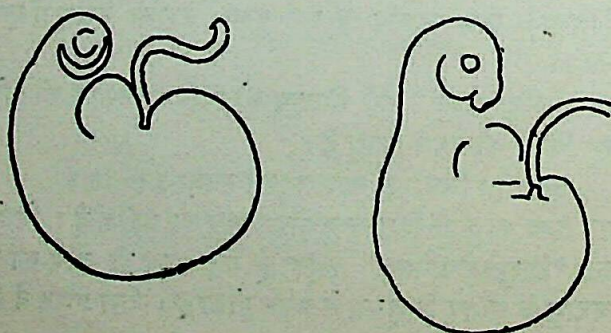
शिशुसंप्रदाय तथा श्रुति वही ॐकार को ही उपास्य मानता है।

ओंकार बिंदु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः

अभी 'महाभारत' का सर्वसार 'गीता' का अभिमत विचारणीय है। 'गीता' में उपास्य भाव से पंचदश अध्याय पुरुषोत्तम योग नाम से प्रसिद्ध है। जो मुक्त पुरुष है वही इनको जानता है। कृष्ण भगवान स्पष्ट कहते हैं कि यह मेरा मत नहीं है। यह गुह्यतम शास्त्र पहले से ऋषि लोगों को विदित था। जो इनको जानता है वह बुद्धिमान और धन्य है। स्पष्ट शब्दों में 'गीता' में कहा है पुरुषोत्तम क्षर से उत्तम अक्षर से भी उत्तम है। 'गीता' के मतानुसार एक जीव चैतन्य, एक विक्षेप शक्ति माया चैतन्य, तीसरा उत्तमातिउत्तम ब्रह्म चैतन्य है। एक आता है और जाता है, द्वितीय यातायात की क्रिया की रचना करती है। इसको छोड़कर और कोई संयोजिका है—जो कि जीव और ब्रह्म को संयुक्त कर सके। तीसरा कूटस्थ और अचल है। सारा अध्याय इसी भाव का द्योतक है। एक भूतमय क्षर, एक कूटस्थ अक्षर एक उत्तम अव्यक्त परमात्मा का प्रतीक है। 'गीता' में परिष्कार रूप में कहा है यही तत्त्व लोक अर्थात् समाज में, और वेद अथवा शास्त्र विचारों में प्रतिष्ठित है। इसी से सूचित होता है—.

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च !
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ! !
उत्तमः पुरुषस्तवन्यः परमात्मेत्युदाहृतः !
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ! !
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः !
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तमः ! ! १५-१८

आर्य भारत में यह पुरुषोत्तम एक प्रतीक रूप में प्रकटित हो गया था। महाभारत के शान्ति पर्व में विष्णु सहस्रनाम के आधार पर भगवान भीष्म ने एक श्लोक व्यक्त किया है—

योग भोगविदा नेताः प्रधान पुरुषेश्वरः।
नारसिंह वपुः श्रीमान् केशव पुरुषोत्तम।
पुराणपुरुषो विष्णुः पुरुषोत्तम उच्यते ॥

(पुरुषोत्तम सहस्रनामेऽपि)

जिस तत्त्व भावना में क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के विचार रूप में, इसके विचार

योग्य विधान के रूप में, नेता मुख्य रूप में, प्रधान पुरुषेश्वर प्रधान प्रकृति माया के आधीश रूप में प्रतिष्ठित है। भीष्म भगवान कहते हैं यह नृसिंह का स्वरूप है। सारे सौन्दर्य की केन्द्रीभूत वस्तु है। त्रिदेवात्मक केशव है। इन्हीं को पुरुषोत्तम कहा जाता है। भीष्म स्तोत्र के प्रारम्भ में—

जगत्प्रभुदेवदेवमनन्त पुरुषोत्तमः
तथा तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्यभूपते।

पुरुषोत्तम ही जगन्नाथ है यह भाव स्पष्ट कर दिया है। जिसकी आदि शंकराचार्य जी ने "जगन्नाथ स्वामी" रूप में प्रशस्ति की है। और जगन्नाथ रूप में इन्हें "परब्रह्म पीड्य" अर्थात् परब्रह्म का स्वरूप कहा है। शंकराचार्य जी ने अपने भाष्य में कहा है वही प्रधान पुरुष ही "जगन्नाथ स्वामी माया" सहित विद्यमान है। माया सबल, परमात्मा निर्लिप्त मय ब्रह्म, यही उक्ति "ब्रह्म पुराण" भी समर्पित करता है। स्वयं शंकराचार्य जी ने, विष्णु सहस्त्रनाम के मंगलाचरण श्लोक में "नित्योनित स्वयं ज्योति सर्वंगः पुरुषः परं" रूप में, चिन्तन किया है। और महाभारत के शान्ति पर्व के भीष्म स्तवराज पर्व में भीष्म जी ने कहा है—

विदित्वा भक्ति योगन्तु भीष्मस्यपुरुषोत्तमः।

"मैं भक्ति-भाव में अपने पुरुषोत्तम की कथा व्यक्त करता हूं। केशव पुरुषोत्तम भीष्म देव के पुरुषोत्तम के प्रतीक रूप में लिये गए हैं। और यह भी कहा गया है कि वे समस्त विश्व के कर्ता जगन्नाथ जी हैं जो कि शीर्ष स्थानीय परम पद है।

तस्य लोक प्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते का तात्पर्य हुआ।

यवैश्वरस्य कर्तारं जगतस्य स्थुषा पतिम्।
वदन्ति जगताध्यक्षः अक्षरः परम पदम्॥ (शंकर भाष्ये)

वही जगताध्यक्ष ही जगदीश्वर जगन्नाथ रूप में विदित हुए हैं। पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम में वैश्वानर कहे हैं—

विसर्गकर्ता सर्वेशः कोटिसूर्य समप्रभः।
अनन्तगुण गम्भीरो महापुरुष पूजितः॥ (सो ४८)

पितामह भीष्म ने कृष्ण भगवान के सामने भीष्मस्य पुरुषोत्तम शब्द में साफ कहा है "पुरुषोत्तम एक प्रतीक तत्त्व है। महाभारत के अनुरूप हरिवंश महापुराण में भी पुरुषोत्तम चेतना के विषय में कुछ अभिमत

व्यक्त किया है। हरिवंश महापुराण स्पष्ट कहता है "हे धर्म के पालक ! हे जगन्नाथ ! आपकी उपासना ही ब्रह्म उपासना है।"

तदुपासा जगन्नाथ सैवास्तु मम गोप्तये।

अद्वैत मार्तण्ड आदि शंकराचार्य ने विष्णु सहस्रनाम के मंगलाचरण में पुरुषोत्तम तत्त्व को विश्वरूप तत्त्व के रूप में लिया है। उनके विचार में प्रणव तत्त्व ही विराट रूप का प्रतीक है।

सहस्रमूर्ते पुरुषोत्तमस्य सहस्रनेत्रानन पाद वाहो।

पुराण साहित्य को यहां जान-बूझकर गौण भाव में लिया जाता है। तथापि व्यासकृत पुराण साहित्य का प्रथम श्लोक ब्रह्म पुराण से उद्धृत किया जाता है तत्त्व गंभीरता के लिए।

यस्मात सर्वमिदं प्रपंचरहितं
माया जगत जायते।
यस्मिन तिष्ठति चांति चान्त समये
कल्पानुकल्पे पुनः।
यं ध्वात्वा मुनयो समाधि समये
शुद्धं वियत् सन्निभं।
तं वंदे पुरुषोत्तमाख्य विमलं
नित्यं विभुं निश्चलम्।।

इस श्लोक में कहा गया है पुरुषोत्तम माया के सहित विराजित हैं। पूर्वोक्त आलोचना से यह स्पष्ट हुआ है ब्रह्म, जीव, माया ही पुरुषोत्तम चेतना का प्रधान उपादान है। फिर "ब्रह्म पुराण" कहता है यह रहस्य समाधि में ही उपलब्ध होता है। उपनिषद् तत्त्व इसको भी स्वीकार करते हैं। एक अभिमत प्रतिष्ठित है कि प्रलय काल में सब डूब जाता है केवल पुरुषोत्तम क्षेत्र ही अवशेष रूप में रह जाता है। इस प्रमाण के लिए महाभारत के वन पर्व और श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पुरुषोत्तम क्षेत्र या पूरी पृथ्वी के ककूद रूप में मान्यता प्राप्त है। जब महाप्रलय हुआ सारा संसार जल में डूब गया। हिमालय की निकटवर्ती नदी पुष्पवाहा भी विलुप्त हो गई। उसी जलावर्त के भीतर महर्षि मार्कण्डेय ने देखा—

देवदेव जगन्नाथ कल्पाना परिवर्तक
परिवृत्तमिदं सर्वं येन स्थावर जंगमम्। (स्क० पु० ३१।२०)

भागवतपुराण उसी विषय पर व्यक्त किया भिन्न रूप में—

तस्मिन् पृथिव्या ककुद प्ररूढ वट च
तत्पर्ण पुटे पुरुष शयानः ।।

पृथ्वी के ककुद देश में एक वट वृक्ष है। उस वट वृक्ष के पत्ते पर भगवान बाल मुकुन्द रूप में शायित हैं। महाशिशु बाल मुकुन्द प्रलय के प्रतीत हैं। इसीलिए ये अपने शरीर मात्र को अंगुष्ठ मात्र के द्वारा पुनः शोषण करते हैं, और संसार केयूप स्वरूप कल्पवृक्ष (कल्पवट) के पत्र में निर्लिप्त शयन करते हैं। इसी से स्पष्ट होता है कल्पवृक्ष का व्यष्टि परिमंडल महाप्रलय से वच गया था। 'महाभारत' वन पर्व और 'श्रीमद्भागवत' इसी ककूद स्वरूपी भूमि को "अन्तर्वेदी" और वटवृक्ष को "कल्पवृक्ष" कहते हैं। **अन्तर्वेदी रक्षममपरिस्त मूर्तिभि "स्कन्द पुराणे"**। श्रीमद्भागवत में जब कृष्णावतार के लिए देवताओं ने ब्रह्मा सहित दशमस्कन्ध द्वितीय अध्याय में स्तुति की थी तब निर्गुणात्मक भगवान की स्तुति की थी। परन्तु एक जीवन वृक्ष की दृष्टि से या प्रतीक रूप के आधार में। वृक्षपूजन का प्रतीक चिन्ता श्रीमद्भागवत वाक्य में प्राचीन परम्परानुगत रूप में प्रकट हुआ है।

एकायनो सा द्विफल स्त्रीमूलः चतुरस पंचविध षडात्मा।
सप्तत्वग अष्टविटपो नवाक्षः दशछन्दि द्विखग ह्यादिवृक्षः।।

(भागवत १० मे)

इसी स्तुति में परमात्मा संतुष्ट होकर पुरुषोत्तम विचार में तीन रूप में प्रकट हुए थे। कृष्णवासुदेव, संकर्षण, योगमाया, भद्रा, जो कि पुरुषोत्तम चेतना का त्रितत्त्व भावना का समावेश है। और ब्रह्म, जीव माया का प्रतीक है। गर्भ स्थिति में पुनः परमातमा को त्रिसत्य वोलकर प्रार्थना की गयी है। इसी के फलस्वरूप त्रिगुणात्मक पुरुषोत्तम कृष्णावतार रूप में प्रकट हुए। **वसुदेव गृहे साक्षात् भगवान पुरुष परः।**

भागवतीय मतानुसार—

"धाम मामकम्" वासुदेव आदि-शेष रूप में, विष्णु माया भगवती विद्युत कन्या के रूप में, और स्वयं हरि ने कृष्ण के रूप में लीला की थी। इसमें से माया की लीला कुल दो दिन की थी। यशोदा गर्भ सम्भूता आद्याशक्ति ने क्रूर कंस के हाथों से छूटकर माया लीला का संवरण किया।

"देवी भागवत" के द्वितीय अध्याय हयग्रीव अवतार की भूमिका में अवतार रूप में आविर्भावित होने के लिए प्रार्थना की गई और कहा

गया 'वेद जिन देवताओं को स्मरण करते हैं, मान्य करते हैं वह सर्व-देवमय आदि देव जगन्नाथ भगवान सर्व कारण के कारण हैं। उनको प्रणाम !

आदिदेवो जगन्नाथः सर्वकारण कारणः।
तस्यापि वदन छिन्न देवयोगात् कथं तदा ॥२।२॥

ब्रह्मा जी ने देवी भागवतीय अरनास्तव में सृष्टिक्रम प्रसंग में अवतार के रूप में स्वागत किया है—

देव देव जगन्नाथ भूतभव्य भवत् प्रभोः।

सर्वजगतां प्रभुभाव से वो पुरी के जगन्नाथ हों या न हों, लेकिन पुरुषोत्तम जगन्नाथ सर्वप्रथम प्राकृत विग्रह रूप में स्वीकृत हुए हैं। अष्टादश पुराणों में "वामन पुराण" एक प्राचीन पुराण है। इसके गजेन्द्र मोक्षण स्तुति में पुरुषोत्तम. देवगुह्य रूप में स्वीकृत हुए हैं अर्थात् तत्त्वमय रूप में—

तं देवगुह्य पुरुष पुराणं।
वन्दाम्यहं लोकपति वरेण्यः॥

स्कन्दपुराण भी पुरुषोत्तम देवता के संपूर्ण तत्त्वमय स्वरूप में ग्रहण किया है—

निष्प्रपंच निराकार निर्विकार निराश्रयः
स्थूलसूक्ष्माणु महिम्न स्थौल्य सौक्ष्म विवर्जितः
गुणातीत गुणाधार त्रिगुणात्म नमोस्तुते।

('क्षेत्रमहात्मे' स्कन्द)

उसी पर्याय में गजेन्द्र ने कहा है "अहो शेषशायी अनन्त पुरुषोत्तम आप शुक्ल अरुण और घननील के वर्णत्रयी की समष्टि हैं। आप मेरी रक्षा करो।"

नागेन्द्र भोगशयनाय च सुप्रियाय।
गोक्षीर हेम शुक नील धनोपमाय॥
पीताम्बराय मधुकैटभनाशनाय।
विश्वाय चारुमुकुटाय नमोक्षराय॥४१॥

उसी कूटस्थ पुरुषोत्तम को गजेन्द्र ने किस भाव से तत्त्वपूर्ण प्रार्थना की थी। देखिए—

कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्यरूपं नारायणं कारणमादिदेव।
युगान्त शेष पुरुषं पुरातनं तं देवदेव शरणं प्रपद्ये॥

इसी से स्पष्ट होता है कि पुरुषोत्तम चेतना में अवश्य सफेद केसरिया और गाढ़े नीले रंग की समष्टि होनी चाहिए। "अनुश्रुति" में पुरुषोत्तम चेतना को "गीता" के अनुसार समर्थित किया गया है और अव्यक्त तत्त्व का प्रतीक माना गया है।

क्षराक्षरं विसृष्टस्तु प्रोच्यते पुरुषोत्तम।
अव्यक्त शाश्वत देवं प्रभव पुरुषोत्तमम् ।। १७

स्कन्द पुराण में ब्रह्म स्तुति में पुरुषोत्तम जगन्नाथजी को अव्यक्त प्रतीकमूर्ति रूप में स्वीकार किया गया है। जो कि कृष्ण वासुदेव वाद से समुन्नत भाव के ऊपर आधारित है।

महदादि जगतसर्वः मायाविलसित तव
यदेतदखिलाभासं तत्त्वदज्ञान ससंभवम्
ज्ञातेत्वयी विलियन् रज्जु सर्पादिबोधवत्
अनिर्वक्तव्य मे वेदं—सत्वासत्त्व विवेकतः ।।२७।१८।।

उपरोक्त आलोचनाओं से पुरुषोत्तम चेतना का प्रतीकवाद और त्रितत्त्व रहस्य जो प्रकट होता है उससे ज्ञात होता है कि ये समालोचनाएं जगन्नाथ तत्त्व के साथ मिलती हैं या नहीं ? प्रथमतः यह निश्चित है कि श्री जगन्नाथ प्रतिमा सम्पूर्ण सगुण प्रतिमा नहीं है। निर्गुणता का परिचय वेद के अनुसार उन मूर्तियों में प्रतिफलित हुआ है।

अत्यद्भुत निवसति साक्षात्तनुभृतोहरे।
अलौकितीसाप्रतिमा लौकिकीतिप्रकीर्तिता ।।२३-७९।।

इसलिए उस मूर्तितत्त्व को व्यास परंपरा अलौकिक अर्थात् अवतारातीत रूप से स्वीकृत किया है।

उपनिषद् साहित्य तथा कृष्णचन्द्र मुख निःसृत गीता ने इस अवस्था को ब्रह्म का विकल्प विग्रह माना है।

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम
असक्त सर्वभूच्चैव निर्गुण गुण भोक्तु च ।।१३।१५

पुरुषोत्तम क्षेत्र की प्रतिमाओं के हाथ हैं पर मनुष्य की तरह नहीं हैं। आंखें हैं पर पलक नहीं हैं। पाद हैं लेकिन विश्वाकृति जैसे—जैसे पुरुष सूक्त का "पादरव विश्वम" इसीलिए निर्गुण वाद से जब सगुण वाद संचरित हुआ तब प्रतीक वाद ही पुरुषोत्तम चेतना के रूप में रह गया।

सगुनहिं अगुनहिं नहि कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा।।
अगुन अरूप अलख अज होई।
भगति प्रेम बस सगुन सो होई।।

× × ×

बिनु पद चलहिं सुनहिं बिन काना।
कर बिनु करहिं करम विधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी।। (रामचरितमानस)

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति सत्यज्ञान अनन्त, सत चित आनन्द के प्रमाणानुसार जगन्नाथ एक ही स्थान है जहां दिव्य मूर्ति त्रितत्व के ऊपर आधारित है। इसीको क्षर, अक्षर, उत्तम, आकार, उकार, मकार रूप शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है। ऐसी तीन मूर्तियों की उपासना पुरुषोत्तम चेतना के अतिरिक्त कहीं भी उपासित नहीं होती है।

"स्कन्धपुराण" के पुरुषोत्तम खंड में भगवान श्री जगन्नाथ जी को विष्णु रूप में, सुभद्रा जी योगमाया शक्ति रूप में, और बलभद्र जी को शिव स्वरूप माना गया है। पुनः श्री सुभद्रा जी को पद्म योनि प्रजापति, बलभद्र जी को आदिशेष महा रुद्र (अनन्तनाम), और श्री जगन्नाथ जी क्षीरोदक शायी महा विष्णु माना गया है। "श्वेताश्वतर" उपनिषद की अनुचिन्ता भी पुरुषोत्तम मूर्ति के भीतर उपलब्ध करने योग्य है। भगवान श्री जगन्नाथ जी का कोई जन्म चरित्र नहीं है। वो अजन्मा हैं। इनको पुरुष रूप में भी माना जाता है और स्त्री रूप में श्रृंगार भी किया जाता है। भगवान सदैव साड़ी पहनते हैं नासिका में नासिका अलंकार। तंत्र में जगन्नाथ जी को दक्षिण काली के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतवर्ष में प्रसिद्ध काली पीठ कलकत्ता नगरी में प्रतिष्ठित महाकाली देवी की यूपाकृति विग्रह और पुरुषोत्तम जगन्नाथ जी के यूपाकृत विग्रह में साम्यता इस अभिमत का प्रत्यक्ष प्रमाण है।
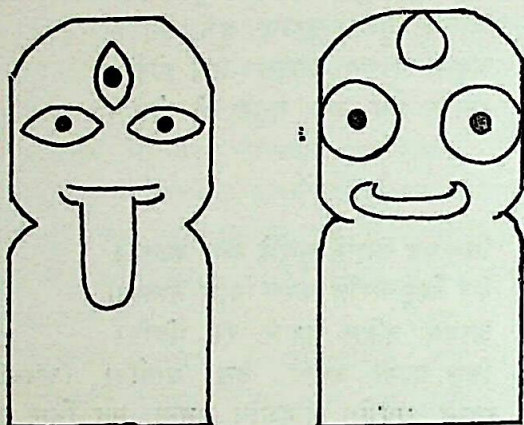
और पारवर्ती पूजा संस्कार के समय में श्री जगन्नाथ जी पूजा पद्धति में "क्लीं" बीज पुरुषोत्तम जगन्नाथ के वीज रूप में प्रसिद्ध है। जैसे महाकाली देवी का "क्रीं" बीज। समग्र भारतवर्ष में केवल पुरुषोत्तम क्षेत्र में दो भाइयों के बीच में आया सुभद्रिका बहन रूप में विराजित है। यह भी एक अपूर्व भाव प्रतीक है। स्कन्दपुराण कहता है—

सुभद्रा भद्ररूपाज्ञा भगिनी स्त्री प्रर्वतिका"

क्या यह सत्य नहीं कि सृष्टि की प्रथम नारी स्रष्टा की स्त्री थी नचेत महान् सृष्टि रचित हुई कैसे ? इसलिए कहा गया है—

त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवी जननीवरा
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृजते जगत् ।। (दुर्गा सप्तशती)

तथाहि कुलचूड़ामणितन्त्रानुसार

अतिगुह्यतरा माया (नित्या) सृष्टि स्थिति विधायिनी
सर्वदेव सर्वसिद्धि वीजभूता सनातनी ५।४ पृष्ठ ४१

यही शाक्त तत्त्व तथा सृष्टि रहस्य के आधार पर शाक्त चेतना पुरुषोत्तम त्रितत्व वाद को "त्रिधामा त्रात्मिका नित्या" रूप से ग्रहण किया है। और शाक्त चिन्तन तथा तन्त्र रहस्य के स्वरूप में जीव "चैतन्य रूपक वलभद्र 'श्रीं' वीज के प्रतीक है। योगमाया भुवनेश्वरी सुभद्रिका मुख्य शाक्त मंत्र "ह्रीं" की प्रतीक तथा श्री जगन्नाथ "क्लीं" बीच के प्रतीक रूप में सुविदित है। प्रतीक चिन्तन के आधार पर बीजत्रय के चित्र के साथ "श्रीं ह्रीं क्लीं" बीजों के अनुरूप प्रतिमा

साम्यता की रक्षा की गई है। शाक्त तत्व में वस्तुतः जगन्नाथ जी मौलिकतः "वषट्कार" स्वरूप माने गए हैं।

विष्णुसहस्रनाम में विष्णु ही महाशक्ति महाद्युति रूप में परिचित हुए हैं (३२ श्लोक)। योगमाया सुभद्रिका की उपासना ही पुरुषोत्तम चेतना का सर्वतंत्र सिद्धान्त का परम अवदान है। वही वृहत्संहिता का एकनंशा एकेन अंश प्रतिपादित माया रूप में विदिता ॥

इसी तत्त्व के अनुसार श्री जगन्नाथ जी तंत्र में भी प्रणव स्वरूप में विदित है। जगत गुरु आदि शंकराचार्य जी प्रत्यक्ष शिष्य तथा गोवर्धन पीठ के प्रथम आचार्य पद्मपाद ने अपने प्रपंचसार महातन्त्र में प्रभु जगन्नाथ जी को "अकचटतप मूर्तिः" अर्थात् वर्णमयी मूर्ति माना है। निम्न में वीजत्रयी की भावना उल्लेखित है। उसी विचार में तंत्रमार्ग जगन्नाथजी को **यन्त्र मूर्ति जगन्नाथः सर्वशक्ति स्वरूपवान** स्वरूप को श्रेष्ठत्व देता है।

बुद्धितत्व का प्रतीक 'श' आत्म रूप प्रकाश शक्ति 'र' पावकतत्व 'इ' रेततत्व तथा ँ महानाद ये बीज जीव मात्रस्य सौन्दर्य तत्व श्रीं है।

'ह' आकाश तत्व का प्रतीक अर्धमात्रा इकार मात्रा तथा प्राणशक्ति का संकेत 'र' अग्नितत्व 'ँ' अर्धचन्द्राकृति महानाद यह बीज शक्ति प्रणव शक्ति माना जाता है वह ह्रीं है।
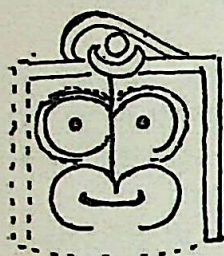
बाह्य विकल्प का सर्व-देवमय भाव 'लँ' लय बीज तथा परादृष्टि का प्रतीक दर्शन 'इ' कार आत्म शक्ति का संकेत और अर्धचन्द्राकृति प्रणव नाद स्वरूप काम बीज क्लीँ सर्व काम मय क्लीँ का प्रतीक है।

सुभद्रा पुरुषोत्तम चेतना में कृष्णानुजा सुभद्रा अर्जुन-पत्नी नहीं है: सुभद्रा समस्त देवताओं की जननी आदिति है। अर्थ वर्ण शीर्ष उपनिषद कहता है—

तां देवा अत्वजायन्ते भद्रा अमृत बन्धनम् १३

सृष्टि रहस्य के अनुसार पुरुष निद्रागत थे, उनकी इच्छा शक्ति जाग्रत हुई व विचार हुआ लोक संग्रह (विश्वकल्याण) के लिए मैं सृष्टि क्रिया करूंगा। **"एकोऽहं बहुस्याम"** जन्म हुआ मणिपुर चक्र से अप्राकृत पद्म। ये था पुरुषोत्तम की माया का प्रतीक। पद्म कर्णिकोपरि ब्रह्म, धाता थे, सृजन शक्ति के प्रतीक रूप में। तब उस प्रथम दिवस में ब्रह्म आदि-जीव रूप में; माया विष्णु शक्ति मायिक चेतना रूप में; और ब्रह्म पुरुषोत्तम रूप में प्रतिष्ठित थे।

मां सुभद्रा पुरुषोत्तम चेतना में विश्वजननी प्रथम विद्या रूप में विराजित है। माधव रूपी भगवान यहां माया विद्यापति पुरुषोत्तम स्वामी वाचक है।

मा विद्या च हरे प्रोक्ता तस्या इशोयता भवान्
तस्मान् माधव नामासि धव स्वामीति शब्दिता ॥

(शंकरभाष्यात्)

विष्णु माया के विषय में राजा सुरथ ने पूछा "का हि सा देवी महामायेति या भवेद ? मार्कण्डेयादि ऋषि कहते हैं "सा नित्यैव जगन्मूर्तिः स नित्या माया", अक्षर ब्रह्म प्रणव में अकार, उकार, मकार मात्राओं के रूप में "अधिष्ठित त्रिधामात्रात्मिका स्थिता है। जो कि महाविद्या विष्णु माया सनातनी रूप में विख्यात है। पुरुषोत्तम चेतना में शाक्त तत्व भी प्रतीक रूप में आया है। प्रतिमा रूप से वह चिन्ता-धारा निश्चित रूप में आदिम है।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारा स्वारात्मिका
सुधात्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिकास्थिता:
(सप्तशती १-७३)

उपनिषदों के वर्णानुसार एक प्रतीक विग्रह में चन्द्र है। सूर्य और तारा मण्डल भी है। हुताशन का प्रतीक भी है। परन्तु किसी का भी स्वतंत्र तेज नहीं है। ज्योति मंडल इनका परम बिन्दु, चन्द्र सूर्य इनके नेत्र युग्म अद्भुत मुख अग्नि स्वरूप। किन्तु किसी का तेज नहीं है। ये सब ब्रह्म तेज में विलीन हो जाते हैं। वो उपनिषदीय ब्रह्मतत्व का भी प्रतीक है। आत्म चैतन्य स्थूल रूप में सूक्ष्मादि शक्ति सूक्ष्म रूप में, ब्रह्म चैतन्य परम रूप में पुरुषोत्तम चेतना में अन्तर्भुक्त है। 'गीता' के पंचदश अध्याय में वर्णित उलट वृक्ष जिसका मूल शीर्षदेश में और वृक्षात्मक विकास निम्न देश में कल्पित हुआ है। चित्र संख्या चार से विदित हो जाता है यह अवधारण: कैसे आदि वृक्ष उपासना का प्रतीक है। (उलट वृक्ष चित्र द्रष्टव्य पृ० ८२ पर)

सर्वप्रथम विचार किया जाता है क्यों अश्वत्थ वृक्ष को आदि वृक्ष माना गया है, अश्वत्थ वृक्ष में ऐसा कुछ लक्षण है जिसके द्वारा इसे वृक्ष मानने की यथार्थता है। अश्वत्थ वृक्ष का छिलका शुक्ल वर्ण और तना रक्त वर्ण और भीतर में कृष्ण वर्णमय सुषिर रहता है और अश्वत्थ वृक्ष का पत्र ऐसा निर्मित हुआ है जो वायुवेग के साथ कांपता है। जैसे मनुष्य भवसमुद्र के घात-प्रतिघात में कांपता है। इसीलिए "गीता" अश्वत्थ वृक्ष को संसार वृक्ष के रूप में स्वीकार करती है। वृक्ष तत्व की दृष्टि से विचार करने से पहले बीज भूमि के भीतर बोया जाता है और जलवायु व तेजस के प्रभाव से बीज अंकुरित होता है। अंकुरित होने के कुछ दिन बाद द्विपत्र प्रस्फुटित होते हैं और वहां से शाखा पल्लवित होकर क्रमशः महाद्रुम में परिणत होता है। लेकिन अश्वत्थ वृक्ष का लक्षण सम्पूर्ण विपरीत है। गीता में इसका लक्षण दिया है—

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमवत्थं पाहुरव्ययम्
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

इसीको लोक साहित्य में उजानि वृक्ष या (उलट वृक्ष कहते हैं)। इसमें मूल ऊपर को रहता है और सम्पूर्ण वृक्ष नीचे कीओर। यही लक्षण तुलनात्मक रूप में श्री जगन्नाथ जी के मुखारविन्द के सामंजस है। वृक्ष-तत्व का अवतारणा प्रसंग में नृसिंह रूप का एक महनीय अवदान

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थप्राहुरव्ययम।

ऊर्ध्वमूलं

परंज्योतिं
शीरोभुषणं

प्रथमपत्रयुग्म

नेत्रयुग्म

मध्यशाख

शाखवाहु

अश्वत्थवृक्ष

ब्रह्माडभांडोदर

पुरुषोत्तमप्रतीकः

स्वाभाविक
वृक्ष

संसारवृक्ष

प्रथमशाखा
युग्म

मूलद्विपत्रयुग्म
युग्मपत्र

वृक्षमूलं

प्रच्छन्न है जिसको जड़-चेतन विचार कहा जाता है।

जडवं चेतनः सूत्र में नरसिंह स्तंभ से उत्पन्न हुए थे; इसका अर्थ हुआ जड़ में भी ब्रह्मभाव विराजित है। इसलिए वैखानसोक्त पुरुषोत्तम नाम प्रशस्ति में है—

महानुभावः साकार सर्वाकारः प्रमाण भूः।
स्तंभ प्रसुति नृहरि नृसिंहो भीमविक्रम॥१०४

पुनः विष्णुसहस्रनाम का केशव नारसिंह वपु, वो पुरुषोत्तम जगन्नाथ रहस्य में स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है—

"स्कन्दपुराण" उत्कल खंड में श्री जगन्नाथ सर्वप्रथम नारसिंह रूप में उपासित होते थे। और उन नारसिंह विग्रह को पुरुषोत्तम नारसिंह कहा जाता था। नरसिंह तत्त्व में एक महान् रहस्य प्रकटित हुआ है। जिसे पुरुषोत्तम चेतना कहा जा सकता है। जड़ पदार्थ स्तम्भ से तेजोमय नरसिंह भगवान का आविर्भाव हुआ। और दारू तथा वृक्ष तत्त्व से पुरुषोत्तम आविर्भावित हुए। इसी दृष्टि से जगन्नाथ जी दारू ब्रह्म रूप में जड़ चेतन वाद के समन्वय विग्रह हैं। "कपिल संहिता" में उल्लेखनीय है "जगन्नाथ पुरुषोत्तम रूप में सर्व देवताओं के भीतर स्वराट है।"

सर्वेषां सर्व क्षेत्राणां राजा श्री पुरुषोत्तम,
सर्वेषां सर्व देवानां राजा श्री पुरुषोत्तमः

तात्पर्य है कि भारत या आर्यावर्त में पुरुषोत्तम के नाम पर पुरी ही सुविदित है जिसका मूलसूत्र है एक समन्वय चेतना।

पुरुषोत्तम चेतना भीष्म देव के हृदय में जाग्रत होकर वही "जगन्नाथस्य भूपते" वाक्य में प्रकाशित हुई है। स्थूलतः ब्रह्म पुराण से पुरुषोत्तम माहात्म्य प्रारम्भ होकर स्कन्धपुराण, नारदीयपुराण, इत्यादि पुराणों के साहित्य में विस्तारित हुआ है। महाभारत वनपर्व से विदित होता है पुरुषोत्तम क्षेत्र ही एक मात्र अवशेष है जो कि महाप्रलय में नष्ट नहीं होता है। श्रीमद्भागवत महापुराण कृष्णावतार तत्त्व के साथ मिलाकर त्रिसत्य सम्मानित कृष्ण, वासुदेव वाद को प्रख्यात किया। फलतः प्राचीन अभिमत तथा उपनिषदीय विचारधारा क्रमशः आच्छादित हो गई। धीरे-धीरे श्री जगन्नाथ केवल धर्मपीठ के आधीश स्वरूप रह गए। लोक मर्यादा धामरूप से प्रतिष्ठित हुई परन्तु विस्मृत हो गया "वेद प्रतिपादित प्रणव रहस्य।" ब्रह्म वर्णमय

प्रणव में अकार-रूपी वासुदेव, उकार मात्रा माया, तथा मकार स्वरूप विष्णु "अक्षराणामकारास्मि" रहस्य धीरे-धीरे लोक मानस से दूर हो गया। "ओमित्येकाक्षर ब्रह्म" पौराणिक मन्त्र में परिणत हुआ। सम्प्रति पुनः प्राचीन भावधारा समाज को जन-चिन्ता को पुनः प्रबुद्ध करेंगे यही आशा है। भगवान पुरुषोत्तम ही भव समुद्र से पार करने वाली नौका, "प्रणव उडुप" ओंकार प्रत्यक्ष प्रत्येक धर्मशास्त्र की मान्य वस्तु है। यही प्रणव रहस्य प्रतिमा तत्त्व में "ॐ तत् सत्" रूप में पुरुषोत्तम चेतना त्रितत्त्व में परिणत हुई है।

ॐ तत्सदिति निर्देश ब्रह्मणास्त्रि विध स्मृतः
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता पुरा ।।१७-२३

वही प्रणव चेतना का मूल मन्त्र—

तत्रक्षराग्रज साक्षात् योगमाया चिदात्मिकाः
ओंकार परम ब्रह्म, त्रिधामेकैव तत्वतः ।। पुरुषोत्तमपुराणे।

(नीलमणे)

क्षेत्र माहात्म्य में कहा है साधारण लौकिक भावना को छोड़कर मुक्तिप्रद प्रणव स्वरूप जगत-कारण जगन्नाथ को प्रणाम करना ही उचित है—

निरूपित रोपित हेयस्य स्वरूपहीनं प्रणव स्वरूप ७।६५

इसी मूर्तित्रय के भीतर श्री जगन्नाथ जी की मूर्ति को तथा ओंकार को भुला देने से तत् मूर्ति सुभद्रा जी, सत मूर्ति बलभद्र जी की कोई सत्ता नहीं रहती। किन्तु केवल जगन्नाथ जी का ही दर्शन लाभ करने से आत्मतृप्ति होती है। इसीलिए उत्कल देश में शताधिक एक जगन्नाथ विग्रह पतित पावन रूप में प्रतिष्ठित है। भारतीय संस्कृति में पुरुषोत्तम शुद्ध साम्य मैत्री व समन्वय वाद का प्रतीक है। इसीलिए भारत का प्रत्येक आचार्य श्री जगन्नाथ जी को अपने सिद्धांत के प्रतिपादन स्वरूप में स्वीकार करते हैं। आशा है आज अनेक धर्मों के अनेकत्व मनोभाव में यह चेतना एकत्व संचार करेगी।

देवत्व तथा उपासना मार्ग को क्रमपरिणति की दृष्टि से विचार करने से उपलब्ध होता है "वेद से दो शाखा के द्वारा निराकार भावना क्रमशः साकार रूप में ही मानवीय विचार को नियन्त्रण किया है। वेद से यौगिक विचार में ज्योति, ज्योतिका उपमा सूत्र में पुरुष, क्रमशः यूप स्कंभ, प्रतीक पुरुष से तत्वमूर्ति पुरुषोत्तम प्रतिष्ठित हुए हैं। अन्यतः

आगम विचार में नादानुसंधान साधनाप्रक्रिया बीज विज्ञान, यन्त्ररहस्य तंत्र का अबलम्बन में प्रतीक वाद के द्वारा अनेकत्व में एकत्व प्रतिपादन क्रम में पुरुषोत्तम जगन्नाथ सर्वतत्वमय समन्वय का प्रतीक रूप में प्रतिष्ठित है। वही पुरुषोत्तम चेतना का निर्यास तथा महनीय सिद्धांत है। सर्व तंत्र स्वतंत्र है। इसलिए प्रतीक विग्रह जगन्नाथ की उपासना केवल भक्ति या पौराणिक हाव-भाव के ऊपर प्रतिष्ठित नहीं है। पुरुषोत्तम चेतना संपूर्णतया सांस्कृतिक तथा आत्मज्ञान सापेक्ष है। आत्मज्ञान रहित भक्ति सात्विक नहीं मानी जाती है। जगत और जगन्नाथ में कोई अन्तर नहीं है। संप्रति सारा जगत पुरुषोत्तम के आदर्श
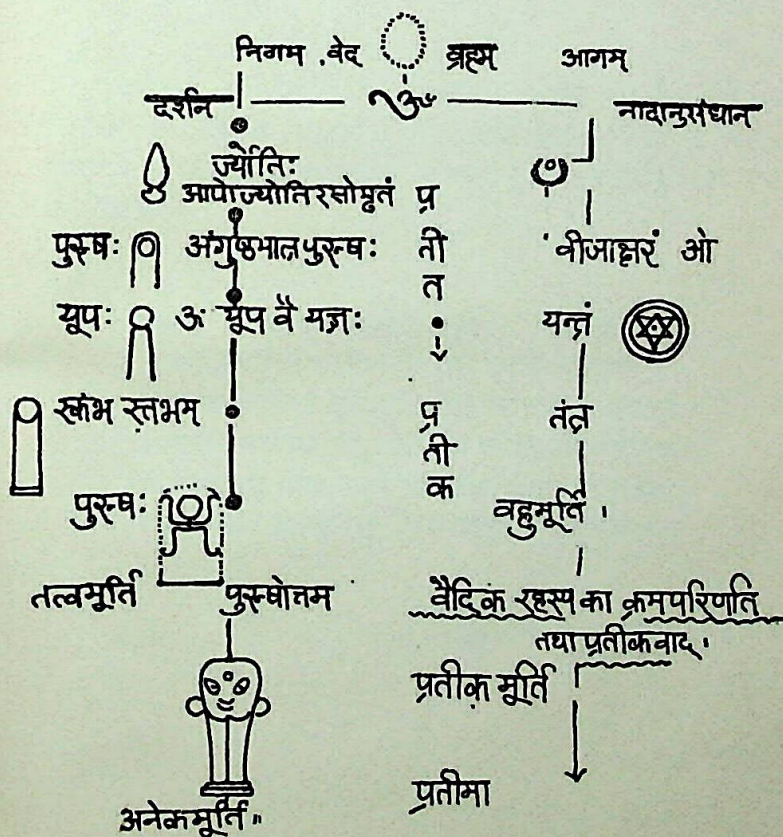
में अनुप्राणित होंगे। ये व्यास देव की महान् आशा है; समय आ रहा है सारे विश्व को विश्वभावन जगन्नाथ अनुप्राणित करेंगे। मैं व्यास मुखाब्ज निःसृत वाणी के द्वारा उनका चिन्तन करता हूं।

आत्मज्ञानाय या भक्ति क्रियते सा च सात्विकी, जगद्धेद जगन्नाथो नान्यच्चापि च कारणम् ।। अहंच् न ततो भिन्नो मत्तोहसौ न पृथक स्थितः ।।

—स्क० पु० उ० ख० १०-८४

पावन पदांक

पुरुषोत्तम पुरी सर्वाचार्यं अभिनन्दित महान पीठ है । श्रीमद्-भागवत का सर्वमान्य टीकाकार श्रीधरस्वामीपाद के रचित निम्नोक्त श्लोक से पावन पदांक का महत्त्व उपलब्ध होता है । टिप्पणी पृ० ९२ पर देखिए—

यदारु ब्रह्ममूर्तिप्रणव तनुधरं सर्ववेदांतसारं
भक्तानां कल्पवृक्ष भवजलतरणी सर्वतत्वानुतत्वम् ।
सिद्धानायोगतत्व हरिहर नमितं श्रीपति वैष्णेवानां
शैवानां भैरवाख्यं पशुपतिर्मिति शाक्ततत्वे चशक्तिः
बौद्धाना बुद्ध साक्षातक्रुस भयितवरं जैनसिद्धान्तसारैः
तंदेव कल्पवृक्षतलनील शिखराधिपतिपातु नित्यम ।

महापुरुष विवृते मंगलाचरण में ।

सर्वधर्मों का प्रतीकचक्र
और पुरुषोत्तमचेतना

सर्वधर्मतत्व के प्रतीक जगन्नाथ जी के मार्गदर्शन, प्रवर्तक, सिद्धान्तों को त्रिमूर्तिक्रम मे प्रदर्शन किआ गया है।
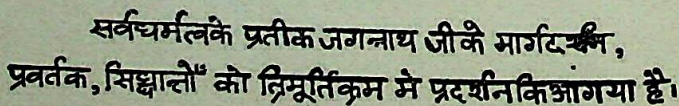
पावन पदांक

महर्षि अंगीरस भगवान मृग, कल्पजीवी मार्कण्डेय और कंडु थी पदांक आध्यात्मिकता था। छायावलम्बन करके अद्वैत मार्तण्ड, आदि शंकर ने पुरुषोत्तम क्षेत्र में पदार्पण करके सोहम् ब्रह्मवाद के अहंकार को भगवत चरणारविन्द में समर्पण किया था। और ब्रह्म, जीव, माया, के रूप त्रिमूर्ति को ग्रहण किया था और गायन किया।

परंब्रह्म पीडः कुवल यदलोत्फुल्ल नयनो
निवासी नीलाद्रौ निहित चरणोऽनन्त शिरसि।
रसानंदी राधा सरस वपुरालिङ्गन सुखो"
जगन्नाथ स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥

गोवर्धन पीठ जगतगुरु शंकराचार्य जी की पवित्र स्मृति है। पूर्व भारतवर्ष का समुद्र तट पर नोलांचल नामक स्थान में ये पीठ का संबंध में शंकरपीठस्य गुरुक्रमाम्नाय ३ पृष्ठों में उल्लेख है—

प्राच्यांक्षीरोदधेस्तीरे नील शैलान्तरे हरेः
पीठं संस्थापयामास गोवर्धनमुत्तमम्
अलं चक्रे पद्मपादाचार्य वर्येण स्थापितं" चार सौ वर्ष बीत गए श्री भाष्यकार रामानुज विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार करते हुए पुरुषोत्तम क्षेत्र में पहुंचे थे। ख्रीस्टीय द्वादश शताब्दी में। भगवान रामानुज के "एम्वाडियम मठाम्नाय" में प्रकाशित हुआ था। आदि शेष की शय्या में श्रीमन् नारायण सुभद्रा जी के प्रजन्पति के स्वरूप में विद्यमान है।

"सुभद्रा प्राणनाथाय जगन्नाथायते नमः"

रामानुज कोट इनकी पवित्र स्मृति में विराजित है और इन्हीं के प्रभाव से पुरुषोत्तम क्षेत्र का नाम हुआ श्रीक्षेत्र। उसके पश्चात पधारे श्री माधवाचार्य निम्बार्क विष्णुस्वामी, रामानन्द और श्री वल्लभाचार्य। रामानन्द जी को छोड़कर प्रत्येक आचार्य ने भगवान जगन्नाथ जी को कृष्ण वासुदेव वाद के रूप में ग्रहण किया। कृष्ण वासुदेव वाद के श्री जगन्नाथ जी साक्षात कृष्ण साथ में बलभद्र श्री राम और वैष्णवी अनुसार एक नाम साही सुभद्रा जी हैं। उन महात्माओं की पवित्र स्मृति

में गौड़ माधव अखाड़ा, राम जी मठ, राधा वल्लभी मठ, जगन्नाथ जी मठ और महाप्रभु जी की बैठक प्रतिष्ठित है।

रामानन्दाचार्य जी श्री जगन्नाथ जी भगवान को श्री राम स्वरूप श्री बलभद्र जी को रामानुज और श्री सुभद्रा जी को जनकनन्दिनी रूप में स्वीकार करते थे। बड़ा अखाड़ा पंच रामानन्दी पंचायत ने निसान उठाकर कहा कि बाल्मीकि रामायण के अनुसार श्री जगन्नाथ जी सूर्य वंश के इष्ट देव हैं। (लंका काण्ड अध्याय १०८)

आराधय जगन्नाथः इक्ष्वाकु कुल दैवतम्।

पुनः वैष्णवधारा के नामावतार महाप्रभु श्री चैतन्य देव पुरुषोत्तम क्षेत्र पधारे। उनके साथ अति बड़ी जगन्नाथ दास, अच्युतानंद, महापुरुष शिशु अनन्त यशोवन्त, मत्त बलराम दास ने इसी धर्म प्रवाह को सम्मानित किया। प्रभु श्री चैतन्य महाभाव रसराज की प्रत्यक्ष अनुभूति को लेकर पत्थर को भी पानी के रूप में गला दिया। और हा कृष्ण! बोलकर श्री जगन्नाथ विग्रह में लीन हो गए। कहते थे "वृन्दावने घिलेन्न हरि आछेन नीलाचले (पुरी) महाभाव प्रकाशे" इन्हीं का प्रतीक पीठ चैतन्य गभींरा और बहु वैष्णव मठ। सतगुरु नानक ने श्री जगन्नाथ जी को अजपा, ओकार सतिगुर कहकर बाउल मठ की स्थापना की। संत कबीर ने समुद्र के वेग का प्रतिरोध करने के साथ श्री जगन्नाथ भगवान को निराकार आकार ब्रह्म नाथ लेकर गाथा लिखी थी। उन्होंने कबीर छत्ता की स्थापना की थी। उत्कलीय वैष्णवों की सहस्र रचना अति बड़ी शाखा, निम्बाल गद्दी में सुरक्षित है। बाद में आए श्री गुरु गोविन्द सिंह, संत अर्जुनसिंह और पुरुषोत्तम जी को सद्ज्योति की आख्या देकर मंगू और पंजाबी मठ की स्थापना करके चले गए।

समर्थ रामदास, तुकाराम, विट्ठल और संत तुलसीदास के आगमन से महान भगवत भावना श्री क्षेत्र में प्लावित हुई और स्वतंत्र मठों की स्थापना हुई। संत तुलसीदास जी अपनी मधुमय वाणी में बोले—

"जोई राम सोई जगदीशा। जिन्हहि का अंत न पावत शेषा॥"

बड़छत्ता मठ से लेकर तुलसी चौरा तक उनकी पवित्र नाम गाथा प्रतिध्वनित होती है। बीच में आए योगी गोरखनाथ लक्ष्मीभद्र निरंजन छत्ता की स्थापना की और श्री जगन्नाथ जी को अलख निरंजन नाम से पुकारने लगे। शारदा देश से नकुलिष पाशुपत दर्शन के प्रचारक कर्नाम गिरि आए और उन्होंने जगन्नाथ जी को पशुपति नाम प्रदान

किया। तंत्र मत के अधिष्ठाता श्री उदयनाचार्य, कृष्णानंद वागीश, विज्ञान भिक्षु पुरुषोत्तम क्षेत्र में आए और श्री जगन्नाथ जी त्रिमूर्ति को त्रिशक्ति के रूप में स्वीकार कर गए। ऐसे ही पुनः चार सौ वर्ष बीत गए। आए पागल हरिनाथ वामक्षेपा। बाद में ठाकुर श्री रामकृष्ण परमहंस महाभाव आवेग से भरे हुए हृदय में मां शारदा पुरुषोत्तम क्षेत्र पधारीं। इनकी पवित्र स्मृति में हरिनाथ आश्रम, वामाश्रम और रामकृष्ण मठ आश्रम विराजित है। महाराष्ट्र के राजगुरु बाबा ब्रह्मचारी महाराष्ट्र से आकर पुरी धाम में धर्म प्रचार करने लगे। पुरी से लेकर कन्दरपुर तक। वाराणसी के अस्सीघाट में श्री जगन्नाथ मन्दिर की स्थापना की। श्री गणपति भट्ट श्री जगन्नाथ जी को गणेश रूप में, गोपाल भट्ट जी ने बाल गोपाल के रूप दर्शन किए। उत्तर मुगलकाल के पैगम्बर मुगदल जहनियां हाज़ी कादिरबेग भक्त शाल बेग मुगल होने पर भी श्री जगन्नाथ जी को निराकार ब्रह्म मानते थे। कृष्ण भक्ति में शालबेग तल्लीन थे। बाद में आए युक्तेश्वर गिरि लाहिड़ी महाशय विजय कृष्ण गोस्वामी (जटिया बाबा) और अकलानन्द ब्रह्मचारी। और श्री बहु महिमामय महात्मा आए जिनकी पीठ पावन भूमि में विराजित है। श्री पुरुषोत्तम के आखिरी संत लंगुड़ी बबा अद्वैत ब्रह्माश्रम के अधिष्ठाता। गिरिनार पंत में इनकी ओंकार ध्वनि जाग्रत हुई थी। इस संक्षिप्त परिचय से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से अब तक प्रायः समस्त आचार्यों ने पुरुषोत्तम क्षेत्र में सर्वधर्म समन्वय की ज्योति का दर्शन किया है। सर्व धर्म समन्वय चक्र से प्रत्येक मतवाद जगन्नाथ जी को कैसे मान्यता देते हैं पाठक कृपा करके देख सकते हैं। विशेष विवरण पुरुषोत्तम चेतना का अष्टम खण्ड "मठाम्नाय प्रकरण" में प्रकाशित होगा।

• •

टिप्पणी

श्रीधर स्वामीपाद का जन्म उत्कल प्रान्त का बालेश्वर मण्डल का रेमुणा निकटस्थ मराइग्राम में हुआ था। श्रीधरस्वामी शंकरानंद-भोग-वर्धन पीठाधीश्वर रूप में प्रतिष्ठित थे। श्री जगन्नाथ जी की नृसिह रूप में उपासना करके स्वामीजी ने श्रीमद्भागवत की तत्त्वार्थ बोधिनी टीका का प्रणयन किया था।

"गुरु क्रमाम्नाय" में लिखा है। श्रीधर स्वामी श्रीराम कृष्णानन्द स्वामी के शिष्य थे।

तत् शिष्योऽभूत श्रीधर स्वामिपादीः
जप्त्वा नित्यां मन्त्रराज (नारसिह) स भक्तया।
विद्या चातुर्दशयमभ्यासवश्य
स्वस्य क्षिप्र विप्रभोजं ततान ॥८२॥

श्रीमद्भागवतं सचाति विशद व्याख्याय मुख्यानिमान्
विश्वरयोपकृति चकार नितरां तत्वार्थमादीपयन्
प्राधान्य गिरिशोनृसिह करुणायत्त वभाषेहस्पतु
व्यासोवेत्ति न बाध्य वेत्तिसकलं श्रीधरश्चेत्यपि
॥ ८२ पृष्ठ ११ ॥

उनके महनीय रचित ग्रन्थों में से प्रपंचसारमहातंत्र, कम्बु क्षेत्र प्रशस्ति, महापुरुष विवृति, नृसिहस्तवराज उत्कल देश में पांडुलिपि आकार में उपलव्ध होते हैं परन्तु सश्रद्ध गवेषण होना आवश्यक है।

ॐ नमः